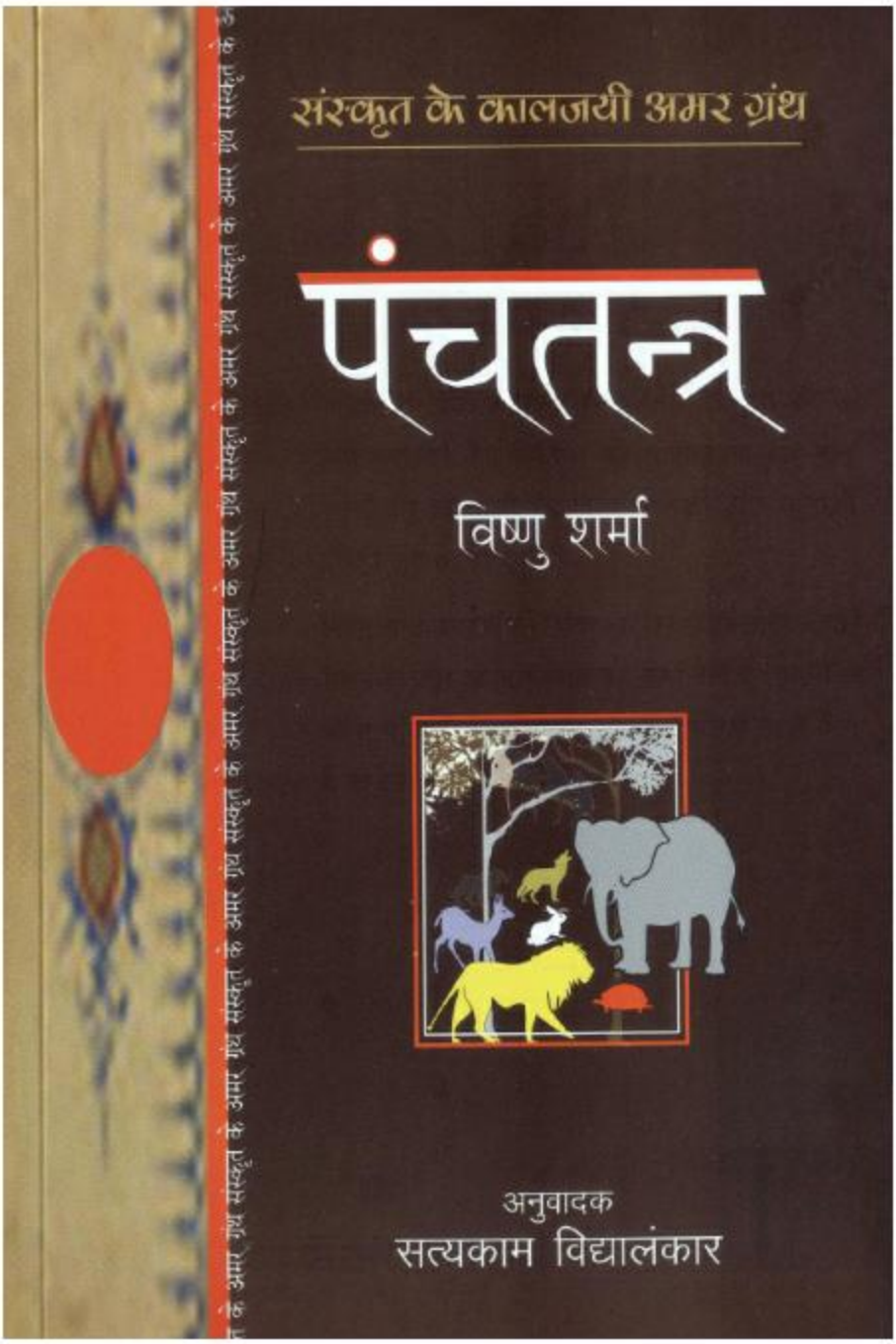
संस्कृत के कालजयी अमर ग्रंथ
पंचतन्त्र
विष्णु शर्मा
अनुवादक
सत्यकाम विद्यालंकार

पंचतन्त्र

आचार्य विष्णु शर्मा के लोकप्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ
पंचतन्त्र का हिन्दी रूपान्तर

अनुवाद एवं संपादन
सत्यकाम विद्यालंकार

राजपाल

भूमिका

प्रत्येक देश के साहित्य में उस देश की लोककथाओं का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। भारत का साहित्य जितना पुराना है उतनी ही पुरानी इसकी लोककथाएँ हैं। इन कथाओं में भी श्री विष्णु शर्मा द्वारा प्रणीत कथाओं का स्थान सबसे ऊँचा है। इन कथाओं का पाँच भागों में संकलन किया गया है। इन पाँच भागों के संग्रह का नाम ही 'पंचतन्त्र' है।

पंचतन्त्र की कथाएँ निरुद्देश्य कथाएँ नहीं हैं। उनमें भारतीय नीतिशास्त्र का निचोड़ है। प्रत्येक कथा नीति के किसी न किसी भाग का प्रतिपादन करती है। प्रत्येक कथा का निश्चित उद्देश्य है।

ये कथाएँ संसार-भर में प्रसिद्ध हो चुकी हैं। विश्व की बीस भाषाओं में इनके अनुवाद हो चुके हैं। सबसे पहले इनका अनुवाद छठी शताब्दी में हुआ था। तब से अब तक यूरोप की हर भाषा में इनका अनुवाद हुआ है। अभी-अभी संसार की सबसे अधिक लोकप्रिय प्रकाशन संस्था 'Pocket Book Inc.' ने भी पंचतन्त्र के अंग्रेज़ी अनुवाद का सस्ता संस्करण प्रकाशित किया है। इस अनुवाद की लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

पंचतन्त्र में भारत के सब नीति-शास्त्रों—मनु, शुक्र और

चाणक्य के नीति वाक्यों का सार कथारूप में दिया है। मन्द से मन्द बुद्धि वाला भी इन कथाओं से गहन से गहन नीति की शिक्षा ले सकता है।

आज से लगभग 160 वर्ष पूर्व इंग्लैंड के प्रसिद्ध विद्वान सर विलियम जोन्स ने पंचतन्त्र के विषय में लिखा था :

Their (The Hindoo's) Neeti Shastra, or System of Ethics, is yet preserved and the fables of Vishnu Sharma, are the most beautiful, if not the most ancient collection of parables in world.

अर्थात् हिन्दुओं का नीति-शास्त्र अभी तक सुरक्षित है और विष्णु शर्मा की कहानियाँ संसार की सबसे पुरानी नहीं तो सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ अवश्य हैं।

प्रोफेसर मूरले ने पंचतन्त्र व हितोपदेश की भूमिका लिखते हुए लिखा था :

It comes to us from a far place and time, as a manual of worldly wisdom, inspired throughout by the religion of its place and time...every fable of Panchatantra can still be applied to human character, every maxim quoted from the wise men of two or three thousand years ago when parted from the local accidents of form, might find its time for being quoted now in church or at home.

सारांश यह है कि पंचतन्त्र के नीति-वाक्यों में सांसारिक ज्ञान का जो कोष है, वह समय और स्थान की दूरी होने पर भी सदैव उपयोगी है। पंचतन्त्र की प्रत्येक कहानी आज भी मानव-चरित्र का सच्चा चित्रण करती है और उसमें लिखे गए दो-तीन हज़ार वर्ष के नीति-वाक्य आज भी मानव मात्र का पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं; आज भी उनका प्रवचन घरों व गिरजाघरों में हो सकता है।

अन्य विदेशी विद्वानों ने भी पंचतन्त्र की कथाओं और उनके नीति-वाक्यों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। फिर भी हमारे देश के लाखों शिक्षित व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने पंचतन्त्र का नाम नहीं सुना है।

अपने साहित्य के प्रति यह उदासीनता अब अक्षम्य है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद अपने साहित्य को उचित आदर देना हमारा कर्तव्य हो गया है। पंचतन्त्र को भारतीय साहित्य-मन्दिर की प्रथम सीढ़ी कहा जा सकता है।

यह पुस्तक उसी पंचतन्त्र का सरल हिन्दी रूपान्तर है। इस पुस्तक में नीतिभाग को साररूप में कहकर कथा-भाग को मुख्यता दी गई है। कुछ कहानियों में विक्षेप होने के कारण उन्हें छोड़ दिया गया है।

–सत्यकाम विद्यालंकार

पंचतन्त्र की कथा

दक्षिण देश के एक प्रान्त में महिलारोप्य नाम का नगर था। वहाँ एक महादानी, प्रतापी राजा अमरशक्ति रहता था। उसके पास अनन्त धन था; रत्नों की अपार राशि थी किन्तु उसके पुत्र बिल्कुल जड़बुद्धि थे। तीनों पुत्रों–बहुशक्ति, उग्रशक्ति, अनन्तशक्ति–के होते हुए भी वह सुखी न था। तीनों अविनीत, उच्छृंखल और मूर्ख थे।

राजा ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर पुत्रों की शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी चिन्ता प्रकट की। राजा के राज्य में उस समय पाँच सौ वृत्ति-भोगी शिक्षक थे। उनमें से एक भी ऐसा नहीं था जो राजपुत्रों को उचित शिक्षा दे सकता। अन्त में राजा की चिन्ता को दूर करने के लिए सुमति नाम के मन्त्री ने सकलशास्त्र पारंगत आचार्य विष्णुशर्मा को बुलाकर राजपुत्रों का शिक्षक नियुक्त करने की सलाह दी।

राजा ने विष्णुशर्मा को बुलाकर कहा कि यदि आप मेरे इन पुत्रों को शीघ्र ही राजनीतिज्ञ बना देंगे तो मैं आपको एक सौ गाँव इनाम में दूँगा। विष्णुशर्मा ने हँसकर उत्तर दिया–महाराज! मैं अपनी विद्या को बेचता नहीं हूँ। इनाम की मुझे इच्छा नहीं है। आपने आदर से बुलाकर आदेश दिया है, इसलिए छह महीने में ही मैं आपके पुत्रों को राजनीतिज्ञ बना दूंगा। यदि मैं इसमें सफल न हुआ तो

अपना नाम बदल डालूंगा।

आचार्य का आश्वासन पाकर राजा ने अपने पुत्रों का शिक्षण-भार उनपर डाल दिया और निश्चिन्त हो गया। विष्णुशर्मा ने उनकी शिक्षा के लिए अनेक कथाएँ बनाईं। उन कथाओं के द्वारा उन्हें राजनीति और व्यवहार-नीति की शिक्षा दी। उन कथाओं के संग्रह का नाम ही 'पंचतन्त्र' है। पाँच प्रकरणों में उनका विभाजन होने से उसे 'पंचतन्त्र' नाम दिया गया है।

राजपुत्र इन कथाओं को सुनकर छह महीने में ही पूरे राजनीतिज्ञ बन गए। उन पाँच प्रकरणों के नाम हैं : 1. मित्रभेद 2. मित्रसम्प्राप्ति 3. काकोलूकीयम् 4. लब्धप्रणाशम् और 5. अपरीक्षितकारकम्।

प्रस्तुत पुस्तक में पाँचों प्रकरण दिए गए हैं।

सूची

प्रथम तन्त्र : मित्र भेद

1. अनधिकार चेष्टा
2. ढोल की पोल
3. अक्ल बडी या भैंस
4. बगुला भगत
5. सबसे बडा बल : बुद्धिबल
6. कुसंग का फल
7. रंगा सियार
8. फूँक-फूँककर पग धरो
9. घडे-पत्थर का न्याय
10. हितैषी की सीख मानो
11. दूरदर्शी बनो
12. एक और एक ग्यारह
13. कुटिल नीति का रहस्य
14. सीख न दीजे बानरा
15. शिक्षा का पात्र
16. मित्र-द्रोह का फल
17. करने से पहले सोचो
18. जैसे को तैसा
19. मूर्ख मित्र

द्वितीय तन्त्र : मित्र सम्प्राप्ति

1. धन सब क्लेशों की जड है
2. बिना कारण कार्य नहीं
3. अति लोभ नाश का मूल
4. भाग्यहीन नर पावत नाहीं
5. उडते के पीछे भागना

तृतीय तन्त्र : काकोलूकीयम्

1. उल्लू का अभिषेक
2. बडे नाम की महिमा
3. बिल्ली का न्याय
4. धूर्तों के हथकण्डे
5. बहुतों से वैर न करो
6. टूटी प्रीति जुडे न दूजी बार
7. शरणागत को दुतकारो नहीं
8. शरणागत के लिए आत्मोत्सर्ग
9. शत्रु का शत्रु मित्र
10. घर का भेद
11. चुहिया का स्वयंवर
12. मूर्ख मण्डली
13. बोलने वाली गुफा
14. स्वार्थ सिद्धि परम लक्ष्य

चतुर्थ तन्त्र : लब्धप्रणाशम्

1. मेढक-साँप की मित्रता
2. आज़माए को आज़माना
3. समय का राग कुसमय की टर्र
4. गीदड गीदड ही रहता है
5. स्त्री का विश्वास

6. स्त्री-भक्त राजा
7. वाचाल गधा
8. घर का न घाट का
9. घमण्ड का सिर नीचा
10. राजनीतिज्ञ गीदड
11. कुत्ते का वैरी कुत्ता

पंचम तन्त्र : अपरीक्षितकारकम्

1. बिना विचारे जो करे
2. लालच बुरी बला
3. वैज्ञानिक मूर्ख
4. चार मूर्ख पण्डित
5. एकबुद्धि की कथा
6. संगीतविशारद गधा
7. मित्र की शिक्षा मानो
8. शेखचिल्ली न बनो
9. लोभ बुद्धि पर पर्दा डाल देता है
10. भय का भूत
11. जिज्ञासु बनो
12. मिलकर काम करो
13. मार्ग का साथी

प्रथम तन्त्र

मित्र भेद

महिलारोप्य नाम के नगर में वर्धमान नाम का एक वणिक्-पुत्र रहता था। उसने धर्मयुक्त रीति से व्यापार में पर्याप्त धन पैदा किया था। किन्तु उतने से उसे सन्तोष नहीं होता था; और भी अधिक धन कमाने की इच्छा थी। छह उपायों से ही धनोपार्जन किया जाता है–भिक्षा, राजसेवा, खेती, विद्या, सूद और व्यापार से। इनमें से व्यापार का साधन ही सर्वश्रेष्ठ है। व्यापार के भी अनेक प्रकार हैं। उनमें सबसे अच्छा यही है कि परदेश से उत्तम वस्तुओं का संग्रह करके स्वदेश में उन्हें बेचा जाए। यही सोचकर वर्धमान ने अपने नगर से बाहर जाने का संकल्प किया। मथुरा जाने वाले मार्ग के लिए उसने अपना रथ तैयार करवाया। रथ में दो सुन्दर, सुदृढ़ बैल लगवाए। उनके नाम थे–संजीवक और नन्दक।

वर्धमान का रथ जब यमुना किनारे पहुँचा तो संजीवक नाम का बैल नदी तट की दलदल में फँस गया।

वहाँ से निकलने की चेष्टा में उसका एक पैर भी टूट गया। वर्धमान को यह देखकर बड़ा दु:ख हुआ। तीन रात उसने बैल के स्वस्थ होने की प्रतीक्षा की। बाद में उसके सारथि ने कहा कि इस वन में अनेक हिंसक जन्तु रहते हैं। यहाँ उनसे बचाव का कोई उपाय नहीं है। संजीवक के अच्छा होने में बहुत दिन लग जाएंगे। इतने दिन यहां रहकर प्राणों का संकट नहीं उठाया जा सकता। इस बैल के लिए अपने जीवन को मृत्यु के मुख में क्यों डालते हैं ?

तब वर्धमान ने संजीवक की रखवाली के लिए रक्षक रखकर आगे प्रस्थान किया। रक्षकों ने भी जब देखा कि जंगल अनेक शेर, बाघ, चीतों से भरा पड़ा है, तो वे भी दो-एक दिन बाद ही वहां से प्राण बचाकर भागे और वर्धमान के सामने यह झूठ बोल दिया–स्वामी! संजीवक तो मर गया। हमने उसका दाह-संस्कार कर दिया। –वर्धमान यह सुनकर बड़ा दु:खी हुआ, किन्तु अब कोई उपाय न था।

इधर, संजीवक यमुना-तट की शीतल वायु के सेवन से कुछ स्वस्थ हो गया। नदी के किनारे की दूब का अग्रभाग पशुओं के लिए बहुत बलदायी होता है। उसे निरन्तर खाने के बाद वह खूब माँसल और हृष्ट-पुष्ट हो गया। दिन-भर नदी के किनारों को सींगों से पाटना और मदमत्त होकर गरजते हुए किनारों की झाड़ियों में सींग उलझाकर खेलना ही उसका काम था।

एक दिन उसी यमुना-तट पर पिंगलक नाम का शेर पानी पीने आया। वहाँ उसने दूर से ही संजीवक की गम्भीर हुंकार सुनी। उसे सुनकर वह भयभीत-सा हो सिमटकर झाड़ियों में जा छिपा।

शेर के साथ दो गीदड़ भी थे, करटक और दमनक।

ये दोनों सदा शेर के पीछे-पीछे रहते थे। उन्होंने जब अपने स्वामी को भयभीत देखा तो आश्चर्य में डूब गए। वन के स्वामी का इस तरह भयातुर होना सचमुच बड़े अचम्भे की बात थी। आज तक पिंगलक कभी इस तरह भयभीत नहीं हुआ था। दमनक ने अपने साथी गीदड़ को कहा–करटक! हमारा स्वामी वन का राजा है। सब पशु उससे डरते हैं। आज वही इस तरह सिमटकर डरा-सा बैठा है। प्यासा होकर भी वह पानी पीने के लिए यमुना-तट तक जाकर लौट आया; इस डर का कारण क्या है ?

करटक ने उत्तर दिया–दमनक! कारण कुछ भी हो, हमें क्या? दूसरों के काम में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं। जो ऐसा करता है वह उसी बन्दर की तरह तड़प-तड़पकर मरता है, जिसने दूसरों के काम में कौतूहलवश व्यर्थ ही हस्तक्षेप किया था।

दमनक ने पूछा–यह क्या बात कही तुमने ?

करटक ने कहा–सुनो :

1. अनधिकार चेष्टा

अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्त्तुमिच्छति।
स एव निधनं याति कीलोत्पाटीव वानरः॥

दूसरे के काम में हस्तक्षेप करना मूर्खता है।

एक गाँव के पास, जंगल की सीमा पर, मन्दिर बन

रहा था। वहाँ के कारीगर दोपहर के समय भोजन के लिए गाँव में आ जाते थे।

एक दिन जब वे गाँव में आए हुए थे तो बन्दरों का एक दल इधर-उधर घूमता हुआ वहीं आ गया जहाँ कारीगरों का काम चल रहा था। कारीगर उस समय वहां नहीं थे। बन्दरों ने इधर-उधर उछलना और खेलना शुरु कर दिया।

वहीं एक कारीगर शहतीर को आधा चीरने के बाद उसमें कील फंसाकर गया था। एक बन्दर को यह कौतूहल हुआ कि यह कील यहां क्यों फँसी हैं। तब आधे चिरे हुए शहतीर पर बैठकर वह अपने दोनों हाथों से कील को बाहर खींचने लगा। कील बहुत मज़बूती से वहां गड़ी थी– इसलिए बाहर नहीं निकली। लेकिन बन्दर भी हठी था, वह पूरे बल से कील निकालने में जूझ गया।

अन्त में भारी झटके के साथ वह कील निकल आई, किन्तु उसके निकलते ही बन्दर का पिछला भाग शहतीर के चिरे हुए दो भागों के बीच में आकर पिचक गया। अभागा बन्दर वहीं तड़प-तड़पकर मर गया।

–इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमें दूसरों के काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हमें शेर के भोजन का अवशेष तो मिल ही जाता है, अन्य बातों की चिन्ता क्यों करें ?

दमनक ने कहा–करटक! तुझे तो बस अपने अवशिष्ट आहार की ही चिन्ता रहती है। स्वामी के हित की तो तुझे परवाह ही नहीं।

करटक–हमारी हित चिन्ता से क्या होता है ? हमारी गिनती उसके प्रधान सहायकों में तो है ही नहीं। बिना पूछे सम्मति देना मूर्खता है। इससे अपमान के अतिरिक्त कुछ

नहीं मिलता।

दमनक—प्रधान-अप्रधान की बात रहने दो। जो भी स्वामी की अच्छी सेवा करेगा वह प्रधान बन जाएगा। जो सेवा नहीं करेगा, वह प्रधान-पद से भी गिर जाएगा। राजा, स्त्री और लता का यही नियम है कि वे पास रहने वाले को ही अपनाते हैं।

करटक–तब क्या किया जाए। अपना अभिप्राय स्पष्ट-स्पष्ट कह दे।

दमनक–आज हमारा स्वामी बहुत भयभीत है। उसके भय का कारण जानकर सन्धि, विग्रह, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव आदि उपायों से हम भयनिवारण की सलाह देंगे।

करटक–तुझे कैसे मालूम कि स्वामी भयभीत है ?

दमनक–यह जानना कोई कठिन काम नहीं है। मन के भाव छिपे नहीं रहते। चेहरे से, इशारों से, चेष्टा से, भाषण-शैली से, आँखों की भ्रूभंगी से वे सब के सामने आ जाते हैं। आज हमारा स्वामी भयभीत है। उसके भय को दूर करके हम उसे अपने वश में कर सकते हैं। तब वह हमें अपना प्रधान सचिव बना लेगा।

करटक–तू राजसेवा के नियमों से अनभिज्ञ है, स्वामी को वश में कैसे करेगा ?

दमनक–मैंने तो बचपन में अपने पिता के संग खेलते-खेलते राजसेवा का पाठ पढ़ लिया था। राजसेवा स्वयं एक कला है। मैं उस कला में प्रवीण हूँ।

यह कहकर दमनक ने राजसेवा के नियमों का निर्देश किया। राजा को सन्तुष्ट करने और उसकी दृष्टि में सम्मान पाने के अनेक उपाय भी बतलाए। करटक दमनक की चतुराई देखकर दंग रह गया। उसने भी उसकी बात मान

ली, और दोनों शेर की राजसभा की ओर चल दिए।

दमनक को आता देखकर पिंगलक द्वारपाल से बोला–हमारे भूतपूर्व मन्त्री का पुत्र दमनक आ रहा है, उसे हमारे पास बेरोक आने दो।

दमनक राजसभा में आकर पिंगलक को प्रणाम करके निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गया। पिंगलक ने अपना दाहिना हाथ उठाकर दमनक से कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा–कहो दमनक! सब कुशल तो है? बहुत दिनों बाद आए! क्या कोई विशेष प्रयोजन है?

दमनक–विशेष प्रयोजन तो कोई भी नहीं। फिर भी सेवक को स्वामी के हित की बात कहने के लिए स्वयं आना चाहिए। राजा के पास उत्तम, मध्यम, अधम, सभी प्रकार के सेवक हैं। राजा के लिए सभी का प्रयोजन है। समय पर तिनके का भी सहारा लेना पड़ता है, सेवक की तो बात ही क्या है!

–आपने बहुत दिन बाद आने का उपालम्भ दिया है। उसका भी कारण है। जहाँ काँच की जगह मणि और मणि के स्थान पर काँच जड़ा जाए, वहाँ अच्छे सेवक नहीं ठहरते। जहाँ पारखी नहीं, वहाँ रत्नों का मूल्य नहीं लगता। स्वामी और सेवक परस्पराश्रयी होते हैं। उन्हें एक-दूसरे का सम्मान करना चाहिए। राजा तो सन्तुष्ट होकर सेवक को केवल सम्मान देते हैं, किन्तु सेवक सन्तुष्ट होकर राजा के लिए प्राणों की बलि दे देता है।

पिंगलक दमनक की बातों से प्रसन्न होकर बोला–तू तो हमारे भूतपूर्व मन्त्री का पुत्र है, इसलिए तुझे जो कहना है, निश्चिन्त होकर कह दे।

दमनक–मैं स्वामी से कुछ एकान्त में कहना चाहता

हूँ। चार कानों में ही भेद की बात सुरक्षित रह सकती है, छह कानों में कोई भेद गुप्त नहीं रह सकता।

तब पिंगलक ने इशारे से बाघ, रीछ, चीते आदि सब जानवरों को सभा से बाहर भेज दिया। सभा में एकान्त होने के बाद दमनक ने शेर के कानों के पास जाकर प्रश्न किया :

दमनक–स्वामी! जब आप पानी पीने गए थे, तब पानी पिए बिना क्यों लौट आए थे? इसका कारण क्या था?

पिंगलक ने ज़रा सूखी हँसी हँसते हुए उत्तर दिया–कुछ भी नहीं।

दमनक–देव! यदि वह बात कहने योग्य नहीं है तो मत कहिए। सभी बातें कहने योग्य नहीं होतीं। कुछ बातें अपनी स्त्री से भी छिपाने योग्य होती हैं। कुछ पुत्रों से भी छिपा ली जाती हैं। बहुत अनुरोध पर भी ये बातें नहीं कही जातीं।

पिंगलक ने सोचा, यह दमनक बुद्धिमान दिखता है; क्यों न इससे अपने मन की बात कह दी जाए–यह सोच वह कहने लगा :

पिंगलक–दमनक! दूर से जो यह हुंकार की आवाज़ आ रही है, उसे तुम सुनते हो?

दमनक–सुनता हूं स्वामी! उससे क्या हुआ?

पिंगलक–दमनक! मैं इस वन से चले जाने की बात सोच रहा हूँ।

दमनक–किसलिए भगवन्!

पिंगलक–इसलिए कि इस वन में यह कोई दूसरा बलशाली जानवर आ गया है, उसी का यह भयंकर घोर गर्जन है। अपनी आवाज़ की तरह वह स्वयं भी इतना ही भयंकर होगा। उसका पराक्रम भी इतना ही भयानक होगा।

दमनक–स्वामी! ऊँचे शब्द मात्र से भय करना युक्तियुक्त नहीं है। ऊंचे शब्द तो अनेक प्रकार के होते हैं। भेरी, मृदंग, पटह, शंख, काहल आदि अनेक वाद्य हैं, जिनकी आवाज़ बहुत ऊँची होती है। उनसे कौन डरता है? यह जंगल आपके पूर्वजों के समय का है। वे यहीं राज्य करते रहे हैं। इसे इस तरह छोड़कर जाना ठीक नहीं। ढोल भी कितने ज़ोर से बजता है। गोमायु को उसके अन्दर जाकर ही पता लगा कि वह अन्दर से खाली था।

पिंगलक ने कहा–गोमायु की कहानी कैसी है?

दमनक ने तब कहा–ध्यान देकर सुनिए :

2. ढोल की पोल

शब्दमात्रात् न भीतव्यम्।

शब्द-मात्र से डरना उचित नहीं।

गोमायु नाम का गीदड़ एक बार भूखा-प्यासा जंगल में घूम रहा था। घूमते-घूमते वह एक युद्धभूमि में पहुँच गया। वहाँ दो सेनाओं में युद्ध होकर शान्त हो गया था। किन्तु एक ढोल अभी तक वहीं पड़ा था। उस ढोल पर इधर-उधर की बेलों की शाखाएँ हवा से हिलती हुई प्रहार करती थीं। उस प्रहार से ढोल से बड़े ज़ोर की आवाज़ होती थी।

आवाज़ सुनकर गोमायु बहुत डर गया। उसने सोचा,

इससे पूर्व कि यह भयानक शब्दवाला जानवर मुझे देखे, मैं यहाँ से भाग जाता हूँ–किन्तु दूसरे ही क्षण उसे याद आया कि भय या आनन्द के उद्वेग में हमें सहसा कोई काम नहीं करना चाहिए। पहले भय के कारण की खोज करनी चाहिए। यह सोचकर वह धीरे-धीरे उधर चल पड़ा, जिधर से शब्द आ रहा था। शब्द के बहुत निकट पहुँचा तो ढोल को देखा। ढोल पर बेलों की शाखाएँ चोट कर रही थीं। गोमायु ने स्वयं भी उस पर हाथ मारने शुरू कर दिए। ढोल और भी ज़ोर से बज उठा।

गीदड़ ने सोचा, यह जानवर तो बहुत सीधा-सादा मालूम होता है। इसका शरीर भी बहुत बड़ा है। मांसल भी है। इसे खाने से बहुत दिनों की भूख मिट जाएगी। इसमें चर्बी, मांस, रक्त खूब होगा। यह सोचकर उसने ढोल के ऊपर लगे चमड़े में दाँत गड़ा दिए–चमड़ा बहुत कठोर था, गीदड़ के दो दाँत टूट गए। बड़ी कठिनाई से ढोल में एक छिद्र हुआ। उस छिद्र को चौड़ा करके गोमायु गीदड़ जब ढोल में घुसा तो यह देखकर बड़ा निराश हुआ कि वह तो अन्दर से बिलकुल खाली है, उसमें रक्त-मांस-मज्जा थे ही नहीं।

× × ×

–इसीलिए मैं कहता हूँ कि शब्द-मात्र से डरना उचित नहीं है।

पिंगलक ने कहा–मेरे सभी साथी उस आवाज़ से डरकर जंगल से भागने की योजना बना रहे हैं। इन्हें किस तरह धीरज बंधाऊं?

दमनक–इसमें इनका क्या दोष? सेवक तो स्वामी का

ही अनुकरण करते हैं! जैसा स्वामी होगा, वैसे ही उसके सेवक होंगे। यह संसार की रीति है। आप कुछ काल धीरज रखें, साहस से काम लें। मैं शीघ्र ही शब्द का स्वरूप देखकर आऊँगा।

पिंगलक–तू वहाँ जाने का साहस कैसे करेगा?

दमनक–स्वामी के आदेश का पालन करना ही सेवक का काम है।

स्वामी की आज्ञा हो तो आग में कूद पड़ूँ, समुद्र में छलाँग मार दूँ।

पिंगलक–दमनक! जाओ इस शब्द का पता लगाओ। तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो, यही मेरा आशीर्वाद है।

तब दमनक पिंगलक को प्रणाम करके संजीवक के शब्द की ध्वनि का लक्ष्य बाँधकर उसी दिशा में चल दिया।

दमनक के जाने के बाद पिंगलक ने सोचा–यह बात अच्छी नहीं हुई कि मैंने दमनक का विश्वास करके उसके सामने अपने मन का भेद खोल दिया। कहीं वह उसका लाभ उठाकर दूसरे पक्ष से मिल जाए और उसे मुझ पर आक्रमण करने के लिए उकसा दे तो बुरा होगा। मुझे दमनक का भरोसा नहीं करना चाहिए था। यह पदच्युत है, उसका पिता मेरा प्रधानमन्त्री था। एक बार सम्मानित होकर अपमानित हुए सेवक विश्वासपात्र नहीं होते। वे सदा अपने इस अपमान का बदला लेने का अवसर खोजते रहते हैं। इसलिए किसी दूसरे स्थान पर जाकर दमनक की प्रतीक्षा करता हूँ।

यह सोचकर वह दमनक की राह देखता हुआ दूसरे स्थान पर अकेला चला गया।

दमनक जब संजीवक के शब्द का अनुकरण करता

हुआ उसके पास पहुँचा तो यह देखकर उसे प्रसन्नता हुई कि वह कोई भयंकर जानवर नहीं बल्कि सीधा-सादा बैल है। उसने सोचा, अब मैं सन्धि-विग्रह की कूटनीति से पिंगलक को अवश्य अपने वश में कर लूँगा। आपत्तिग्रस्त राजा ही मन्त्रियों के वश में होते हैं।

यह सोचकर वह पिंगलक से मिलने के लिए वापस चल दिया।

पिंगलक ने उसे अकेले आया देखा तो उसके दिल में धीरज बंधा। उसने कहा–दमनक, वह जानवर देख लिया तुमने?

दमनक–आपकी दया से देखा, स्वामी!

पिंगलक–सचमुच?

दमनक–स्वामी के सामने असत्य नहीं बोल सकता मैं। आपकी तो मैं देवता की तरह पूजा करता हूं, आपसे झूठ कैसे बोल सकूँगा?

पिंगलक–सम्भव है तूने देखा हो, इसमें विस्मय क्या? और इसमें भी आश्चर्य नहीं कि उसने तुझे नहीं मारा। महान व्यक्ति महान शत्रु पर ही अपना पराक्रम दिखाते हैं, दीन और तुच्छ जन पर नहीं। आंधी का झोंका बड़े वृक्षों को ही गिराता है, घास-पात को नहीं।

दमनक–मैं दीन ही सही, किन्तु आपकी आज्ञा हो तो मैं उस महान पशु को भी आपका दीन सेवक बना दूँ।

पिंगलक ने लम्बी साँस खींचते हुए कहा–यह कैसे होगा दमनक?

दमनक–बुद्धि के बल से सब कुछ हो सकता है स्वामी! जिस काम को बड़े-बड़े हथियार नहीं कर सकते, उस काम को छोटी-सी बुद्धि कर सकती है।

पिंगलक–यदि यही बात है तो मैं तुझे आज से अपना प्रधानमन्त्री बनाता हूँ। आज से मेरे राज्य के इनाम बाँटने या दण्ड देने के काम तेरे ही अधीन होंगे।

पिंगलक से यह आश्वासन पाने के बाद दमनक संजीवक के पास जाकर अकड़ता हुआ बोला–अरे दुष्ट बैल! मेरा स्वामी पिंगलक तुझे बुला रहा है। तू यहाँ नदी के किनारे व्यर्थ ही हुंकार क्यों भरता रहता है?

संजीवक–यह पिंगलक कौन?

दमनक–अरे! पिंगलक को नहीं जानता? थोड़ी देर ठहर तो उसकी शक्ति को जान जाएगा। जंगल के सब जानवरों का स्वामी पिंगलक शेर वहाँ वृक्ष की छाया में बैठा है।

यह सुनकर संजीवक के प्राण सूख गए। दमनक के सामने गिड़गिड़ाते हुए बोला–मित्र ! तू सज्जन प्रतीत होता है। यदि तू मुझे वहाँ ले जाना चाहता है तो पहले स्वामी से मेरे लिए अभय-वचन ले ले।

दमनक–तेरा कहना सच है मित्र! तू यहीं बैठ, मैं अभय-वचन लेकर अभी आता हूँ।

तब, दमनक पिंगलक के पास जाकर बोला–स्वामी ! वह कोई साधारण जीव नहीं है। वह तो भगवान का वाहक बैल है। मेरे पूछने पर उसने मुझे बतलाया कि उसे भगवान ने प्रसन्न होकर यमुना-तट की हरी-हरी घास खाने को यहाँ भेजा है। वह तो कहता है कि भगवान ने उसे यह सारा वन खेलने और चरने को सौंप दिया है।

पिंगलक–सच कहते हो दमनक! भगवान के आशीर्वाद के बिना कौन बैल है जो यहाँ इस वन में इतनी निश्शंकता से घूम सके! फिर तूने क्या उत्तर दिया दमनक?

दमनक–मैंने उसे कहा कि इस वन में तो चंडिका-वाहन-रूप शेर पिंगलक पहले से ही रहता है। तुम भी उसके अतिथि बनकर रहो। उसके साथ आनन्द से विचरण करो। वह तुम्हारा स्वागत करेगा।

पिंगलक–फिर उसने क्या कहा?

दमनक–उसने यह बात मान ली और कहा कि अपने स्वामी से अभय वचन ले आओ, मैं तुम्हारे साथ चलूंगा। अब स्वामी जैसा चाहें, वैसा करूंगा।

दमनक की बात सुनकर पिंगलक बहुत प्रसन्न हुआ, बोला–बहुत अच्छा कहा दमनक, तूने बहुत अच्छा कहा। मेरे दिल की बात कह दी। अब उसे अभय-वचन देकर शीघ्र मेरे पास ले आओ।

दमनक संजीवक के पास जाते-जाते सोचने लगा–स्वामी आज बहुत प्रसन्न हैं। बातों ही बातों में मैंने उन्हें प्रसन्न कर लिया। आज मुझसे अधिक धन्यभाग्य कोई नहीं।

संजीवक के पास जाकर दमनक सविनय बोला–मित्र ! मेरे स्वामी ने तुम्हें अभय-वचन दे दिया है, मेरे साथ आ जाओ। किन्तु, राजप्रसाद में जाकर अभिमानी न हो जाना, मुझसे मित्रता का सम्बन्ध निभाना। मैं भी तुम्हारे संकेत से राज्य चलाऊंगा। हम दोनों मिलकर राज्यलक्ष्मी का भोग करेंगे।

दोनों मिलकर पिंगलक के पास गए। पिंगलक ने नखविभूषित दाहिना हाथ उठाकर संजीवक का स्वागत किया और कहा–कल्याण हो आपका। अन्य इस निर्जन वन में कैसे आ गए?

संजीवक ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। पिंगलक ने सब

सुनकर कहा–मित्र! डरो मत। इस वन में मेरा ही राज्य है। मेरी भुजाओं से रक्षित वन में तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। फिर भी, अच्छा यही है कि तुम हर समय मेरे साथ रहो। वन में अनेक भयंकर पशु रहते हैं। बड़े-बड़े हिंसक वनचरों को भी डरकर रहना पड़ता है, तुम तो फिर हो ही निरामिषभोजी।

शेर और बैल की इस मैत्री के बाद कुछ दिन तो वन का शासन करटक-दमनक ही करते रहे, किन्तु बाद में संजीवक के सम्पर्क से पिंगलक भी नगर की सभ्यता से परिचित हो गया। संजीवक को सभ्य जीव मानकर वह उसका सम्मान करने लगा और स्वयं भी संजीवक की तरह सुसभ्य होने का यत्न करने लगा। थोड़े दिन बाद संजीवक का प्रभाव पिंगलक पर इतना बढ़ गया कि पिंगलक ने अन्य सब वनचर पशुओं की उपेक्षा शुरू कर दी। प्रत्येक प्रश्न पर पिंगलक संजीवक के साथ ही एकान्त में मन्त्रणा किया करता। करटक-दमनक बीच में दखल नहीं दे पाते थे। संजीवक की इस मानवृद्धि से दमनक के मन में आग लग गई।

शेर और बैल की इस मैत्री का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि शेर ने शिकार के काम में ढील कर दी। करटक-दमनक शेर का उच्छिष्ट माँस खाकर ही जीते थे। अब यह उच्छिष्ट मांस बहुत कम हो गया था। करटक-दमनक इससे भूखे रहने लगे। तब वे दोनों इसका उपाय सोचने लगे।

दमनक बोला–करटक भाई! यह तो अनर्थ हो गया। शेर की दृष्टि में महत्त्व पाने के लिए ही तो मैंने यह प्रपंच रचा था। इसी लक्ष्य से मैंने संजीवक को शेर से मिलाया था। अब उसका परिणाम सर्वथा विपरीत ही हो रहा है।

संजीवक को पाकर स्वामी ने हमें बिल्कुल भुला दिया है। यहां तक कि अपना काम भी वह भूल गया है।

करटक ने कहा–किन्तु इसमें भूल किसकी है? तूने ही दोनों की भेंट कराई थी। अब तू ही कोई उपाय कर, जिससे इन दोनों में बैर हो जाए।

दमनक–जिसने मेल कराया है, वह फूट भी डाल सकता है।

करटक–यदि इनमें से किसी को भी यह ज्ञान हो गया कि तू फूट कराना चाहता है, तो तेरा कल्याण नहीं।

दमनक–मैं इतना कच्चा खिलाड़ी नहीं हूँ। सब दाँव-पेंच जानता हूँ।

करटक–मुझे तो फिर भी भय लगता है। संजीवक बुद्धिमान है, वह ऐसा नहीं होने देगा।

दमनक–भाई! मेरा बुद्धि-कौशल सब करा देगा। बुद्धि के बल से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। जो काम शस्त्रास्त्र से नहीं हो पाता, वह बुद्धि से हो जाता है, जैसे सोने की माला से काकपत्नी ने काले साँप का वध किया था।

करटक ने पूछा–वह कैसे?

दमनक ने तब 'सांप और कौवे की कहानी' सुनाई :

3. अक्ल बड़ी या भैंस

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमै:

उपाय द्वारा जो काम हो जाता है वह पराक्रम से नहीं हो

एक स्थान पर वटवृक्ष की एक बड़ी खोल में एक कौवा-कौवी रहते थे। उसी खोल के पास एक काला साँप भी रहता था। वह साँप कौवी के नन्हे-नन्हे बच्चों को उनके पंख निकलने से पहले ही खा जाता था। दोनों इससे बहुत दुःखी थे। अन्त में दोनों ने अपनी दुःख-भरी कथा उस वृक्ष के नीचे रहने वाले एक गीदड़ को सुनाई, और उससे यह भी पूछा कि अब क्या किया जाए। साँप वाले घर में रहना प्राणघातक है।

गीदड़ ने कहा–इसका उपाय चतुराई से ही हो सकता है। शत्रु पर उपाय द्वारा विजय पाना अधिक आसान है। एक बार एक बगुला बहुत-सी उत्तम, मध्यम, अधम मछलियों को खाकर प्रलोभनवश एक करकट के हाथों उपाय से ही मारा गया था।

दोनों ने पूछा–कैसे ?

तब गीदड़ ने कहा–सुनो :

4. बगुला भगत

उपायेन जयो यादृग्रिपोस्तादृङ् न हेतिभिः।

उपाय से शत्रु को जीतो, हथियार से नहीं।

एक जंगल में बहत-सी मछलियों से भरा एक तालाब

था। एक बगुला वहाँ दिन-प्रतिदिन मछलियों को खाने के लिए आता था, किन्तु वृद्ध होने के कारण मछलियों को पकड़ नहीं पाता था। इस तरह भूख से व्याकुल हुआ वह एक दिन अपने बुढ़ापे पर रो रहा था कि एक केकड़ा उधर आया। उसने बगुले को निरन्तर आँसू बहाते देखा तो कहा–मामा ! आज तुम पहले की तरह आनन्द से भोजन नहीं कर रहे, और आँखों से आँसू बहाते हुए बैठे हो, इसका क्या कारण है?

बगुले ने कहा–मित्र ! तुम ठीक कहते हो। मुझे मछलियों को भोजन बनाने से विरक्ति हो चुकी है। आजकल अनशन कर रहा हूँ। इसी से मैं पास में आई मछलियों को भी नहीं पकड़ता।

केकड़े ने यह सुनकर पूछा–मामा ! इस वैराग्य का कारण क्या है?

बगुला–मित्र! बात यह है कि मैंने इस तालाब में जन्म लिया, बचपन से ही यहीं रहा हूं और यहीं मेरी उम्र गुज़री है। इस तालाब और तालाबवासियों से मेरा प्रेम है। किन्तु मैंने सुना है कि अब बड़ा भारी अकाल पड़ने वाला है। बारह वर्षों तक वृष्टि नहीं होगी।

केकड़ा–किससे सुना है?

बगुला–एक ज्योतिषी से सुना है। शनिश्चर जब शकटाकार रोहिणी तारक मण्डल को खण्डित करके शुक्र के साथ एक राशि में जाएगा, तब बारह वर्ष तक वर्षा नहीं होगी। पृथ्वी पर पाप फैल जाएगा। माता-पिता अपनी संतान का भक्षण करने लगेंगे। इस तालाब में पहले ही पानी कम है। यह बहुत जल्दी सूख जाएगा। इसके सूखने पर मेरे सब बचपन के साथी, जिनके बीच मैं इतना बड़ा

हुआ हूं, मर जाएँगे। उनके वियोग-दुःख की कल्पना से ही मैं इतना रो रहा हूं। और इसीलिए मैंने अनशन किया है। दूसरे जलाशयों से भी जलचर अपने छोटे-छोटे तालाब छोड़कर बड़ी-बड़ी झीलों में चले जा रहे हैं। बड़े-बड़े जलचर तो स्वयं ही चले जाते हैं, छोटों के लिए ही कठिनाई है। दुर्भाग्य से इस जलाशय के जलचर बिलकुल निश्चिन्त बैठे हैं, मानो कुछ होने वाला ही नहीं है। उनके लिए ही मैं रो रहा हूं। उनका वंश-नाश हो जाएगा।

केकड़े ने बगुले के मुख से यह बात सुनकर अन्य सब मछलियों को भी भावी दुर्घटना की सूचना दे दी। सूचना पाकर जलाशय के सभी जलचरों, मछलियों, कछुओं आदि ने बगुले को घेरकर पूछना शुरू कर दिया–मामा, क्या किसी उपाय से हमारी रक्षा हो सकती है?

बगुला बोला–यहाँ से थोड़ी दूर पर एक प्रचुर जल से भरा जलाशय है। वह इतना बड़ा है कि चौबीस वर्ष सूखा पड़ने पर भी न सूखे। तुम यदि मेरी पीठ पर चढ़ जाओगे तो तुम्हें वहाँ ले चलूँगा।

यह सुनकर सभी मछलियों, कछुओं और अन्य जलजीवों ने बगुले को 'भाई', 'मामा', 'चाचा' पुकारते हुए चारों ओर से घेर लिया और चिल्लाना शुरू कर दिया–'पहले मुझे', 'पहले मुझे'।

वह दुष्ट सबको बारी–बारी अपनी पीठ पर बिठाकर जलाशय से कुछ दूर ले जाता और वहाँ एक शिला पर उन्हें पटक-पटककर मार देता था। उन्हें खाकर दूसरे दिन वह फिर जलाशय में आ जाता और नये शिकार ले जाता। कुछ दिन बाद केकड़े ने बगुले से कहा :

–मामा ! मेरी तुमसे पहले-पहल भेंट हुई थी, फिर भी

आज तक मुझे नहीं ले गए। अब प्राय: सभी नये जलाशय तक पहुँच चुके हैं; आज मेरा भी उद्धार कर दो।

केकड़े की बात सुनकर बगुले ने सोचा, मछलियाँ खाते-खाते मेरा मन भी ऊब गया है। केकड़े का माँस चटनी का काम देगा। आज इसका ही आहार करूँगा।

यह सोचकर उसने केकड़े को गरदन पर बिठा लिया और चल दिया।

केकड़े ने दूर से ही जब एक शिला पर मछलियों की हड्डी का पहाड़-सा लगा देखा तो वह समझ गया कि यह बगुला किस अभिप्राय से मछलियों को यहाँ लाता था। फिर भी वह असली बात को छिपाकर प्रकट में बोला–मामा ! वह जलाशय अब कितनी दूर रह गया है? मेरे भार से तुम काफी थक गए होगे, इसलिए पूछ रहा हूँ।

बगुले ने सोचा, अब इसे सच्ची बात कह देने में भी कोई हानि नहीं है, इसलिए वह बोला–केकड़े साहब! दूसरे जलाशय की बात अब भूल जाओ। यह तो मेरी प्राणयात्रा चल रही थी। अब तेरा भी काल आ गया है। अन्तिम समय में देवता का स्मरण कर ले। इसी शिला पर पटककर तुझे भी मार डालूँगा और खा जाऊँगा।

बगुला अभी यह बात कह ही रहा था कि केकड़े ने अपने तीखे दाँत बगुले की नरम, मुलायम गरदन पर गड़ा दिए। बगुला वहीं मर गया। उसकी गरदन कट गई।

केकड़ा मृत बगुले की गरदन लेकर धीरे-धीरे अपने पुराने जलाशय पर ही आ गया। उसे देखकर उसके भाई-बन्दों ने उसे घेर लिया और पूछने लगे–क्या बात है? आज मामा नहीं आए? हम सब उनके साथ जलाशय पर जाने को तैयार बैठे हैं।

केकड़े ने हँसकर उत्तर दिया–मूर्खो ! उस बगुले ने सभी मछलियों को यहाँ से ले जाकर एक शिला पर पटककर मार दिया है। यह कहकर उसने अपने पास से बगुले की कटी हुई गरदन दिखाई और कहा–अब चिन्ता की कोई बात नहीं है, तुम सब यहाँ आनन्द से रहोगे।

गीदड़ ने जब यह कथा सुनाई तो कौवे ने पूछा–मित्र ! उस बगुले की तरह यह सांप भी किसी तरह मर सकता है।

गीदड़–एक काम करो। तुम नगर के राजमहल में चले जाओ। वहां से रानी का कंठहार उठाकर सांप के बिल के पास रख दो। राजा के सैनिक कंठहार की खोज में आएँगे और साँप को मार देंगे।

दूसरे ही दिन कौवी राजमहल के अन्त:पुर में जाकर एक कंठहार उठा लाई। राजा ने सिपाहियों को उस कौवी का पीछा करने का आदेश दिया। कौवी ने वह कंठहार साँप के बिल के पास रख दिया। सांप ने उस हार को देखकर उस पर अपना फन फैला दिया था। सिपाहियों ने साँप को लाठियों से मार दिया ओर कंठहार ले लिया।

उस दिन के बाद कौवा-कौवी की सन्तान को किसी साँप ने नहीं खाया। तभी मैं कहता हूँ कि उपाय से ही शत्रु को वश में कर लेना चाहिए।

दमनक ने फिर कहा–सच तो यह है कि बुद्धि का स्थान बल से बहुत ऊँचा है। जिसके पास बुद्धि है, वही बली है। बुद्धिहीन का बल भी व्यर्थ है। बुद्धिमान निर्बुद्धि को उसी तरह हरा देते हैं जैसे खरगोश ने शेर को हरा दिया था।

करटक ने पूछा–कैसे ?

दमनक ने तब 'शेर-खरगोश की कथा' सुनाई :

5. सबसे बड़ा बल : बुद्धिबल

यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।

बली वही है, जिसके पास बुद्धि-बल है।

एक जंगल में भासुरक नाम का शेर रहता था। बहुत बलशाली होने के कारण वह प्रतिदिन जंगल के मृग-खरगोश-हरिण-रीछ-चीता आदि पशुओं को मारा करता था।

एक दिन जंगल के सभी जानवरों ने मिलकर सभा की, और निश्चय किया कि भासुरक शेर से प्रार्थना की जाए कि वह अपने भोजन के लिए प्रतिदिन एक पशु से अधिक की हत्या न किया करे। इस निश्चय को शेर तक पहुँचाने के लिए पशुओं के प्रतिनिधि शेर से मिले। उन्होंने शेर से निवेदन किया कि उसे रोज़ एक पशु बिना शिकार के मिल जाया करेगा, इसलिए वह अनगिनत पशुओं का शिकार न किया करे। शेर यह बात मान गया। दोनों ने प्रतिज्ञा की कि वे अपने वचनों का पालन करेंगे।

उस दिन के बाद से वन के अन्य पशु वन में निर्भय घूमने लगे। उन्हें शेर का भय नहीं रहा। शेर को घर बैठे एक पशु मिलता रहा। शेर ने यह धमकी दे दी थी कि जिस दिन उसे कोई पशु नहीं मिलेगा, उस दिन वह फिर अपने शिकार पर निकल जाएगा और मनमाने पशुओं की हत्या कर देगा।

इस डर से भी सब पशु यथाक्रम एक-एक पशु के शेर के पास भेजते रहे।

इसी क्रम से एक दिन खरगोश की बारी आ गई। खरगोश शेर की मांद की ओर चल पड़ा। किन्तु मृत्यु के भय से उसके पैर नहीं उठते थे। मौत की घड़ियों को कुछ देर और टालने के लिए वह जंगल में इधर-उधर भटकता रहा। एक स्थान पर उसे एक कुआं दिखाई दिया। कुएं में झांककर देखा तो उसे अपनी परछाईं दिखाई दी। उसे देखकर उसके मन में एक विचार उठा, क्यों न भासुरक को उसके वन में दूसरे शेर के नाम से उसकी परछाईं दिखाकर इस कुएं में गिरा दिया जाए?

यही उपाय सोचता-सोचता वह भासुरक शेर के पास बहुत समय बाद पहुँचा। शेर उस समय तक भूखा-प्यासा होंठ चाटता बैठा था। उसके भोजन की घड़ियां बीत रही थीं। वह सोच ही रहा था कि कुछ देर और कोई पशु न आया तो वह अपने शिकार पर चल पड़ेगा और पशुओं के खून से सारे जंगल को सींच देगा। इसी बीच वह खरगोश उसके पास पहुँच गया और प्रणाम करके बैठ गया।

खरगोश को देखकर शेर ने क्रोध से लाल-लाल आँखें करते हुए गरजकर कहा–नीच खरगोश! एक तो तू इतना छोटा है, और फिर इतनी देर लगाकर आया है। आज तुझे मारकर कल मैं जंगल के सारे पशुओं की जान ले लूँगा, वंशनाश कर दूँगा।

खरगोश ने विनय से सिर झुकाकर उत्तर दिया–स्वामी! आप व्यर्थ क्रोध करते हैं। इसमें न मेरा अपराध है, और न ही अन्य पशुओं का। कुछ भी फैसला करने से पहले देरी का कारण तो सुन लीजिए।

शेर–जो कुछ कहना है, जल्दी कह। मैं बहुत भूखा हूँ, कहीं तेरे कुछ कहने से पहले ही तुझे अपनी दाढ़ों में न चबा जाऊँ।

खरगोश–स्वामी! बात यह है कि सभी पशुओं ने आज सभा करके और यह सोचकर कि मैं बहुत छोटा हूं, मुझे तथा अन्य चार खरगोशों को आपके भोजन के लिए भेजा था। हम पाँचों आपके पास आ रहे थे। कि मार्ग में कोई दूसरा शेर अपनी गुफा से निकलकर आया और बोला, 'अरे! किधर जा रहे हो तुम सब? अपने देवता का अन्तिम स्मरण कर लो, मैं तुम्हें मारने आया हूँ।' मैंने उससे कहा, 'हम सब अपने स्वामी भासुरक शेर के पास आहार के लिए जा रहे हैं।' तब वह बोला, "भासुरक कौन होता है? यह जंगल तो मेरा है। मैं ही तुम्हारा राजा हूँ। तुम्हें जो बात कहनी हो, मुझसे कहो। भासुरक चोर है। तुममें से चार खरगोश यहीं रह जाएँ, एक खरगोश भासुरक के पास जाकर उसे बुला लाए, मैं उससे स्वयं निबट लूँगा। हममें जो शेर अधिक बली होगा, वही इस जंगल का राजा होगा। अब मैं किसी तरह उससे जान छुड़ाकर आपके पास आया हूँ। इसीलिए मुझे देर हो गई। आगे स्वामी की जो इच्छा हो, करें।

यह सुनकर भासुरक बोला–ऐसा ही है तो जल्दी से मुझे उस दूसरे शेर के पास ले चल। आज मैं उसका रक्त पीकर ही अपनी भूख मिटाऊँगा। इस जंगल में मैं किसी दूसरे का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता।

खरगोश–स्वामी! यह तो सच है कि अपने स्वत्व के लिए युद्ध करना आप जैसे शूरवीरों का धर्म है, किन्तु दूसरा शेर अपने दुर्ग में बैठा है। दुर्ग से बाहर आकर ही उसने हमारा रास्ता रोका था। दुर्ग में रहने वाले शत्रु पर विजय पाना बड़ा

कठिन होता है। दुर्ग में बैठा शत्रु सौ शत्रुओं के बराबर माना जाता है। दुर्गहीन राजा दन्तहीन साँप और मदहीन हाथी की तरह कमज़ोर हो जाता है।

भासुरक–तेरी बात ठीक है, किन्तु मैं उस दुर्गस्थ शेर को भी मार डालूँगा। शत्रु को जितना जल्दी हो, नष्ट कर देना चाहिए। मुझे अपने बल पर पूरा भरोसा है। शीघ्र ही उसका नाश न किया गया तो वह बाद में असाध्य रोग की तरह प्रबल हो जाएगा।

खरगोश–यदि स्वामी का यही निर्णय है तो आप मेरे साथ चलिए।

यह कहकर खरगोश भासुरक शेर को उसी कुएँ के पास ले गया, जहाँ झुककर उसने अपनी परछाईं देखी थी। वहाँ जाकर वह बोला–स्वामी ! मैंने जो कहा था वही हुआ। आपको दूर से ही देखकर वह अपने दुर्ग में घुस गया है। आप आइए, मैं आपको उसकी सूरत तो दिखा दूँ।

भासुरक–ज़रूर! उस नीच को देखकर मैं उसके दुर्ग में ही उससे लड़ूँगा।

खरगोश शेर को कुएँ की मेड़ पर ले गया। भासुरक ने झुककर कुएँ में अपनी परछाईं देखी तो समझा कि यही दूसरा शेर है। तब वह ज़ोर से गरजा। उसकी गरज़ के उत्तर में कुएँ से दुगुनी गूँज पैदा हुई। उस गूँज को प्रतिपक्षी शेर की ललकार समझकर भासुरक उसी क्षण कुएँ में कूद पड़ा, और वहीं पानी में डूबकर प्राण दे दिए।

खरगोश ने अपनी बुद्धिमत्ता से शेर को हरा दिया। वहाँ से लौटकर वह पशुओं की सभा में गया। उसकी चतुराई सुनकर और शेर की मौत का समाचार सुनकर सब जानवर खुशी से नाच उठे।

इसलिए मैं कहता हूँ कि 'बली वही है जिसके पास बुद्धि का बल है।'

दमनक ने कहानी सुनाने के बाद करटक से कहा–तेरी सलाह हो तो मैं भी अपनी बुद्धि से उनमें फूट डलवा दूँ। अपनी प्रभुता बनाने का यही मार्ग है। मैत्रीभेद किए बिना काम नहीं चलेगा।

करटक–मेरी भी यही राय है। तू उनमें भेद कराने का यत्न कर। ईश्वर करे तुझे सफलता मिले।

वहाँ से चलकर दमनक पिंगलक के पास गया। उस समय पिंगलक के पास संजीवक नहीं बैठा था। पिंगलक ने दमनक को बैठने का इशारा करते हुए कहा–कहो दमनक! बहुत दिन बाद दर्शन दिए!

दमनक–स्वामी! आपको अब हमसे कुछ प्रयोजन ही नहीं रहा तो आने का क्या लाभ? फिर भी आपके हित की बात कहने को आपके पास आ जाता हूँ। हित की बात बिना पूछे भी कह देनी चाहिए।

पिंगलक–जो कहना हो, निर्भय होकर कहो। मैं अभय-वचन देता हूँ।

दमनक–स्वामी! संजीवक आपका मित्र नहीं, बैरी है। एक दिन उसने मुझे एकान्त में कहा था, पिंगलक का बल मैंने देख लिया, उसमें विशेष सार नहीं है। उसको मारकर मैं तुझे मन्त्री बनाकर सब पशुओं पर राज्य करूंगा।

दमनक के मुख से उन वज्र की तरह कठोर शब्दों को सुनकर पिंगलक ऐसा चुप रह गया मानो मूर्च्छा आ गई हो। दमनक ने जब पिंगलक की यह अवस्था देखी तो सोचा, पिंगलक का संजीवक से प्रगाढ़ स्नेह है, संजीवक ने इसे वश में कर रखा है। जो राजा इस तरह मन्त्री के वश में हो

जाता है वह नष्ट हो जाता है। यह सोचकर उसने पिंगलक के मन से संजीवक का जादू मिटाने का निश्चय और भी पक्का कर लिया।

पिंगलक ने थोड़ा होश में आकर किसी तरह धैर्य धारण करते हुए कहा–दमनक ! संजीवक तो हमारा बहुत ही विश्वासपात्र नौकर है। उसके मन में मेरे लिए वैर-भावना नहीं हो सकती।

दमनक–स्वामी! आज जो विश्वासपात्र है, वही कल विश्वासघातक बन जाता है, राज्य का लोभ किसी के भी मन को चंचल बना सकता है। इसमें अनहोनी कोई बात नहीं।

पिंगलक–दमनक! फिर भी मेरे मन में संजीवक के लिए द्वेष-भावना नहीं उठती। अनेक दोष होने पर भी प्रियजनों को छोड़ा नहीं जाता। जो प्रिय है, वह प्रिय ही रहता है।

दमनक–यही तो राज्य-संचालन के लिए बुरा है। जिसे भी आप स्नेह का पात्र बनाएँगे वही आपका प्रिय हो जाएगा। इसमें संजीवक की कोई विशेषता नहीं, विशेषता तो आपकी है। आपने उसे अपना प्रिय बना लिया तो वह बन गया, अन्यथा उसमें गुण ही कौन-सा है? आप यह समझते हैं कि उसका शरीर बहुत भारी है, और वह शत्रु-संहार में सहायक होगा, तो यह आपकी भूल है। वह तो घास-पात खाने वाला जीव है; आपके शत्रु तो सभी माँसाहारी हैं, अत: उसकी सहायता से शत्रु-नाश नहीं हो सकता। आज वह आपको धोखे से मारकर राज्य करना चाहता है। अच्छा है कि उसका षड्यन्त्र पकने से पहले ही उसको मार दिया जाए।

पिंगलक–दमनक! जिसे हमने पहले गुणी मानकर

अपनाया है उसे राजसभा में आज निर्गुण कैसे कह सकते हैं? फिर तेरे कहने से ही तो मैंने उसे अभय-वचन दिया था। मेरा मन कहता है कि संजीवक मेरा मित्र है, मुझे उसके प्रति क्रोध नहीं है। यदि उसके मन में वैर आ गया है तो भी मैं उसके प्रति वैर-भावना नहीं रखता। अपने हाथों लगाया विष-वृक्ष भी अपने हाथों नहीं काटा जाता।

दमनक–स्वामी! यह आपकी भावुकता है। राजधर्म इसका आदेश नहीं देता। वैर-बुद्धि रखने वाले को क्षमा करना राजनीति की दृष्टि से मूर्खता है। आपने उसकी मित्रता के वश में आकर सारा राजधर्म भुला दिया है। आपके राजधर्म से च्युत होने के कारण ही जंगल के अन्य पशु आपसे विरक्त हो गए हैं। सच तो यह है कि आपमें और संजीवक में मैत्री होना स्वाभाविक ही नहीं है। आप माँसाहारी हैं, वह निरामिष-भोजी। यदि आप उस घास-पात खाने वाले को अपना मित्र बनाएँगे तो अन्य पशु आपसे सहयोग करना बन्द कर देंगे। यह भी आपके राज्य के लिए बुरा होगा। उसके संग से आपकी प्रकृति में भी वे दुर्गुण आ जाएँगे जो शाकाहारियों में होते हैं। शिकार से आपको अरुचि हो जाएगी। अपना सहवास अपनी प्रकृति के पशुओं से होना चाहिए। इसीलिए साधु लोग नीच का संग छोड़ देते हैं। संगदोष से ही खटमल की तीव्र गति के कारण मन्दविसर्पिणी जूँ को मरना पड़ा था।

पिंगलक ने पूछा–यह कथा कैसे है?

दमनक ने कहा–सुनिए :

6. कुसंग का फल

न ह्यविज्ञातशीलस्य प्रदातव्य: प्रतिश्रय:।

अज्ञात या विरोधी प्रवृत्ति के व्यक्ति को आश्रय नहीं देना चाहिए।

एक राजा के शयनगृह में शय्या पर बिछी सफेद चादरों के बीच एक मन्दविसर्पिणी सफेद जूँ रहती थी। एक दिन इधर-उधर घूमता हुआ एक खटमल वहाँ आ गया। उस खटमल का नाम था अग्निमुख।

अग्निमुख को देखकर दु:खी जूँ ने कहा–हे अग्निमुख! तू यहाँ अनुचित स्थान पर आ गया है। इससे पूर्व कि कोई आकर तुझे देखे, यहाँ से भाग जा।

खटमल बोला–भगवती ! घर आए हुए दुष्ट व्यक्ति का भी इतना अनादर नहीं किया जाता, जितना तू मेरा कर रही है। उससे भी कुशलक्षेम पूछा जाता है। घर बनाकर बैठने वालों का यही धर्म है। मैंने आज तक अनेक प्रकार का कटु–तिक्त, कषाय-अम्ल रस का खून पिया है; केवल मीठा खून नहीं पिया। आज इस राजा के मीठे खून का स्वाद लेना चाहता हूँ। तू तो रोज़ ही मीठा खून पीती है। एक दिन मुझे भी उसका स्वाद लेने दे।

जूँ बोली–अग्निमुख! मैं राजा के सो जाने के बाद उसका खून पीती हूं। तू बड़ा चंचल है, कहीं मुझसे पहले ही

तूने खून पीना शुरू कर दिया तो दोनों ही मारे जाएँगे। हाँ, मेरे पीछे रक्तपान करने की प्रतिज्ञा करे तो एक रात भले ही ठहर जा।

खटमल बोला–भगवती ! मुझे स्वीकार है। मैं तब तक रक्त नहीं पीऊंगा, जब तक तू नहीं पी लेगी। वचन-भंग करूँ तो मुझे देव-गुरू का शाप लगे।

इतने में राजा ने चादर ओढ़ ली। दीपक बुझा दिया। खटमल बड़ा चंचल था। उसकी जीभ से पानी निकल रहा था। मीठे खून के लालच से उसने जूँ के रक्तपान से पहले ही राजा को काट लिया। जिसका जो स्वभाव हो, वह उपदेशों से नहीं छूटता। अग्नि अपनी जलन और पानी अपनी शीतलता के स्वभाव को कहाँ छोड़ सकता है। मर्त्य जीव भी अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं जा सकते।

अग्निमुख के पैने दाँतों ने राजा को तड़पाकर उठा दिया। पलंग से नीचे कूदकर राजा ने सन्तरी से कहा–देखो, इस शय्या में खटमल या जूँ अवश्य हैं। इन्हीं में से किसी ने मुझे काटा है–सन्तरियों ने दीपक जलाकर चादर की तहें देखनी शुरू कर दीं। इस बीच खटमल जल्दी से भागकर पलंग के पायों के जोड़ों में जा छिपा। मन्दविसर्पिणी जूँ चादर की तह में ही छिपी थी। सन्तरियों ने उसे देखकर पकड़ लिया और मसल डाला।

दमनक शेर से बोला–इसलिए मैं कहता हूँ कि संजीवक को मार दें अन्यथा वह आपको मार देगा, अथवा उसकी संगति से आप जब स्वभाव- विरुद्ध काम करेंगे, अपनों को छोड़कर परायों को अपनाएँगे, तो आप पर वही आपत्ति आ जाएगी जो चण्डरव पर आई थी।

पिंगलक ने पूछा–कैसे ?

दमनक ने कहा–सुनो :

7. रंगा सियार

त्यक्ताश्चाऽयान्तरा येन बाह्यश्चाभ्यतरीकृता:।
स एव मृत्युमाप्नोति मूर्खश्चण्डरवीयथा।

अपने स्वभाव के विरुद्ध आचरण करने वाला...आत्मीयों को छोड़कर परकीयों में रहने वाला नष्ट हो जाता है।

एक दिन जंगल में रहने वाला चण्डरव नाम का गीदड़ भूख से तड़पता हुआ लोभवश नगर में भूख मिटाने के लिए आ पहुँचा।

उसके नगर में प्रवेश करते ही नगर के कुत्तों ने भौंकते-भौंकते उसे घेर लिया और नोचकर खाने लगे। कुत्तों से किसी तरह जान बचाकर चण्डरव भागा। भागते-भागते जो भी दरवाज़ा पहले मिला उसी में घुस गया। वह एक धोबी के मकान का दरवाज़ा था। मकान के अन्दर एक बड़ी कड़ाही में धोबी ने नील घोलकर नीला पानी बनाया हुआ था। कड़ाही नीले पानी से भरी थी। गीदड़ जब डरा हुआ घुसा तो अचानक उस कड़ाही में जा गिरा। वहां से निकला तो उसका रंग बदला हुआ था। अब वह बिल्कुल नीले रंग का हो गया। नीले रंग में रंगा हुआ चण्डरव जब वन में पहुँचा तो सभी पशु उसको देखकर चकित रह गए। वैसे रंग का जानवर उन्होंने आज तक नहीं देखा था।

उसे विचित्र जीव समझकर शेर, बाघ, चीते भी डर-डरकर जंगल से भागने लगे। सबने सोचा, न जाने इस विचित्र पशु में कितना सामर्थ्य हो। इससे डरना ही अच्छा है।

चण्डरव ने जब सब पशुओं को डरकर भागते देखा, तो उन्हें बुलाकर बोला–पशुओ ! मुझसे डरते क्यों हो? मैं तुम्हारी रक्षा के लिए यहाँ आया हूँ। त्रिलोक के राजा ब्रह्मा ने मुझे आज ही बुलाकर कहा था कि आजकल चौपायों का कोई राजा नहीं है। सिंह-मृगादि सब राजाहीन हैं। आज मैं तुझे उन सबका राजा बनाकर भेजता हूँ, तू वहाँ जाकर सबकी रक्षा कर। इसलिए मैं यहाँ आ गया हूँ। मेरी छत्रछाया में पशु आनन्द से रहेंगे। मेरा नाम ककुद्द्रुम राजा है।

यह सुनकर शेर-बाघ आदि पशुओं ने चण्डरव को राजा मान लिया और बोले–स्वामी! हम आपके दास हैं, आज्ञापालक हैं। आगे से आपकी ही आज्ञा का पालन करेंगे।

चण्डरव ने राजा बनने के बाद शेर को अपना प्रधानमन्त्री बनाया, बाघ को नगर-रक्षक और भेड़िये को सन्तरी बनाया। अपने आत्मीय गीदड़ों को जंगल से बाहर निकाल दिया। उनसे बात भी नहीं की।

उसके राज्य में शेर आदि जीव छोटे-छोटे जानवरों को मारकर चण्डरव को भेंट करते थे। चण्डरव उनमें से कुछ भाग खाकर शेष अपने नौकर-चाकरों को बाँट देता था।

कुछ दिन तो उसका राज्य बड़ी शान्ति से चलता रहा, किन्तु एक दिन बड़ा अनर्थ हो गया।

उस दिन चण्डरव को दूर से गीदड़ों की किलकारियाँ

सुनाई दीं। उन्हें सुनकर चण्डरव का रोम-रोम खिल उठा। खुशी में पागल होकर वह भी किलकारियाँ मारने लगा।

शेर-बाघ आदि पशुओं ने जब उसकी किलकारियाँ सुनीं तो वे समझ गए कि यह चण्डरव ब्रह्मा का दूत नहीं, बल्कि मामूली गीदड़ है। अपनी मूर्खता पर लज्जा से सिर झुकाकर वे आपस में सलाह करने लगे–इस गीदड़ ने तो हमें खूब मूर्ख बनाया, इसे इसका दंड दो; इसे मार डालो।

चण्डरव ने शेर-बाघ आदि की बात सुन ली। वह भी समझ गया कि अब उसकी पोल खुल गई है। अब जान बचानी कठिन है। इसलिए वह वहाँ से भागा। किन्तु शेर के पंजे से भागकर कहाँ जाता? एक ही छलाँग में शेर ने उसे दबोचकर खण्ड-खण्ड कर दिया।

–इसलिए मैं कहता हूँ कि जो आत्मीयों को दुत्कार कर परायों को अपनाता है उसका नाश हो जाता है।

दमनक की बात सुनकर पिंगलक ने कहा–दमनक ! अपनी बात को तुम्हें प्रमाणित करना होगा। इसका क्या प्रमाण है कि संजीवक मुझे द्वेषभाव से देखता है?

दमनक–इसका प्रमाण आप स्वयं अपनी आँखों से देख लेना। आज सुबह ही उसने मुझसे यह भेद प्रकट किया है कि कल वह आपका वध करेगा। यदि कल आप उसे अपने दरबार में लड़ाई के लिए तैयार देखें, उसकी आँखें लाल हों, होंठ फड़कते हों, एक ओर बैठकर आपको क्रूर वक्रदृष्टि से देख रहा हो, तब आपको मेरी बात पर स्वयं विश्वास हो जाएगा।

शेर पिंगलक को संजीवक बैल के विरुद्ध उकसाने के बाद दमनक संजीवक के पास गया। संजीवक ने जब उसे घबड़ाए हुए आते देखा तो पूछा–मित्र ! स्वागत हो। क्या

बात है? बहुत दिन बाद आए! कुशल तो है!

दमनक–राजसेवकों के कुशल का क्या पूछना! उनका चित्त सदा अशान्त बना रहता है। स्वेच्छा से वे कुछ भी नहीं कर सकते। नि:शंक होकर एक शब्द भी नहीं बोल सकते। इसलिए सेवावृत्ति को सब वृत्तियों से अधम कहा जाता है।

संजीवक–मित्र! आज तुम्हारे मन में कोई विशेष बात कहने को है, वह निश्चिन्त होकर कहो। साधारणतया राजसचिवों को सब कुछ गुप्त रखना चाहिए। किन्तु मेरे-तुम्हारे बीच कोई परदा नहीं है। तुम बेखटके अपने दिल की बात मुझसे कह सकते हो।

दमनक–आपने अभय-वचन दिया है, इसलिए मैं कहे देता हूँ। बात यह है कि पिंगलक के मन में आपके प्रति पाप-भावना आ गई है। आज उसने मुझे बिल्कुल एकान्त में बुलाकर कहा है कि कल सुबह ही वह आपको मारकर अन्य मांसाहारी जीवों की भूख मिटाएगा।

दमनक की बात सुनकर संजीवक देर तक हतप्रभ-सा रहा, मूर्च्छा-सी छा गई उसके शरीर में। कुछ चेतना आने के बाद तीव्र वैराग्य-भरे शब्दों में बोला–राजसेवा सचमुच बड़ा धोखे का काम है। राजाओं के दिल होता ही नहीं। मैंने भी शेर से मैत्री करके मूर्खता की। समान बल-शील वालों से मैत्री होती है; समान शील-व्यसन वाले ही सखा बन सकते हैं। अब यदि मैं उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करूँगा तो भी व्यर्थ है; क्योंकि जो किसी कारणवश क्रोध करे, उसका क्रोध उस कारण के दूर होने पर दूर किया जा सकता है, लेकिन जो अकारण ही कुपित हो, उसका कोई उपाय नहीं है। निश्चय ही पिंगलक के पास रहने वाले जीवों ने ईर्ष्यावश उसे मेरे विरुद्ध उकसा दिया। सेवकों में प्रभु की प्रसन्नता

पाने की होड़ लगी ही रहती है। वे एक-दूसरे की वृद्धि सहन नहीं करते।

दमनक–मित्रवर! यदि यही बात है तो मीठी बातों से अब राजा पिंगलक को प्रसन्न किया जा सकता है। वही उपाय करो।

संजीवक–नहीं दमनक! यह उपाय सच्चा उपाय नहीं है। एक बार तो मैं राजा को प्रसन्न कर लूंगा, किन्तु उसके पास वाले कूट-कपटी लोग फिर किन्हीं दूसरे झूठे बहानों से उसके मन में मेरे लिए ज़हर भर देंगे और मेरे वध का उपाय करेंगे, जिस तरह गीदड़ और कौवे ने मिलकर ऊंट को शेर के हाथों मरवा दिया था।

दमनक ने पूछा–किस तरह?

संजीवक ने तब ऊंट, कौवों और शेर की यह कहानी सुनाई।

8. फूँक-फूँककर पग धरो

सेवाधर्मः परमगहनो...

सेवाधर्म बड़ा कठिन धर्म है।

एक जंगल में मदोत्कट नाम का शेर रहता था। उसके नौकर-चाकरों में कौवा, गीदड़, बाघ, चीता आदि अनेक पशु थे। एक दिन वन में घूमते-घूमते एक ऊंट वहाँ आ गया। शेर ने ऊँट को देखकर अपने नौकरों से पूछा–यह कौन-सा पशु है? जंगली है या ग्राम्य?

कौवे ने शेर के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा–स्वामी, यह पशु ग्राम्य है और आपका भोज्य है। आप इसे खाकर भूख मिटा सकते हैं।

शेर ने कहा–नहीं, यह हमारा अतिथि है; घर आए को मारना उचित नहीं। शत्रु भी अगर घर आए तो उसे नहीं मारना चाहिए। फिर, यह तो हम पर विश्वास करके हमारे घर आया है। इसे मारना पाप है। इसे अभय-दान देकर मेरे पास लाओ। मैं इससे वन में आने का प्रयोजन पूछूँगा।

शेर की आज्ञा सुनकर अन्य पशु ऊँट को, जिसका नाम क्रथनक था, शेर के दरबार में लाए। ऊँट ने अपनी दु:ख-भरी कहानी सुनाते हुए बतलाया कि वह अपने साथियों से बिछुड़कर जंगल में अकेला रह गया है। शेर ने उसे धीरज बँधाते हुए कहा–अब तुझे ग्राम में जाकर भार ढोने की कोई आवश्यकता नहीं है। जंगल में रहकर हरी-भरी घास से सानन्द पेट भरो और स्वतन्त्रतापूर्वक खेलो-कूदो।

शेर का आश्वासन मिलने पर ऊंट जंगल में आनन्द से रहने लगा।

कुछ दिन बाद उस वन में एक मतवाला हाथी आ गया। मतवाले हाथी से अपने अनुचर पशुओं की रक्षा करने के लिए शेर को हाथी से युद्ध करना पड़ा। युद्ध में जीत तो शेर की ही हुई, किन्तु हाथी ने भी जब एक बार शेर को सूँड़ में लपेटकर घुमाया तो उसका अस्थि-पंजर हिल गया। हाथी का एक दाँत भी शेर की पीठ में चुभ गया था। इस युद्ध के बाद शेर बहुत घायल हो गया था, और नए शिकार के योग्य नहीं रहा था। शिकार के अभाव में उसे बहुत दिन से भोजन नहीं मिला था। उसके अनुचर भी, जो शेर के अवशिष्ट भोजन से ही पेट पालते थे, कई दिनों से भूखे थे।

एक दिन उन सबको बुलाकर शेर ने कहा–मित्रो ! मैं बहुत घायल हो गया हूँ, फिर भी यदि कोई शिकार तुम मेरे पास तक ले जाओ, तो मैं उसको मारकर तुम्हारे पेट भरने योग्य मांस अवश्य तुम्हें दे दूँगा।

शेर की बात सुनकर चारों अनुचर ऐसे शिकार की खोज में लग गए; किन्तु कोई फल न निकला। तब कौवे और गीदड़ में मन्त्रणा हुई। गीदड़ बोला – काकराज ! अब इधर-उधर भटकने का क्या लाभ क्यों न इस ऊँट कथनक को मारकर ही भूख मिटाएँ?

कौवा बोला–तुम्हारी बात तो ठीक है, किन्तु स्वामी ने उसे अभय-वचन दिया हुआ है।

गीदड़–मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे स्वामी उसे मारने को तैयार हो जाएँ। आप यहीं रहें, मैं स्वयं जाकर स्वामी से निवेदन करता हूँ।

गीदड़ ने तब शेर के पास जाकर कहा–स्वामी! हमने सारा जंगल छान मारा है, किन्तु कोई भी पशु हाथ नहीं आया। अब तो हम सभी इतने भूखे-प्यासे हो गए हैं कि एक कदम आगे नहीं चला जाता। आपकी भी दशा ऐसी ही है। आज्ञा दें तो क्रथनक को ही मारकर उससे भूख शान्त की जाए।

गीदड़ की बात सुनकर शेर ने क्रोध से कहा–पापी ! आगे कभी यह बात मुख से निकाली तो उसी क्षण तेरे प्राण ले लूँगा। जानता नहीं कि उसे मैंने अभय वचन दिया है।

गीदड़–स्वामी! मैं आपको वचन-भंग के लिए नहीं कह रहा। आप उसका स्वयं वध न कीजिए, किन्तु यदि वही स्वयं आपकी सेवा में प्राणों की भेंट लेकर आए तब तो उसके वध में कोई दोष नहीं है। यदि वह ऐसा नहीं करेगा

तो हममें से सभी आपकी सेवा में अपने शरीर की भेंट लेकर आपकी भूख शान्त करने के लिए आएँगे। जो प्राण स्वामी के काम न आएँ उनका क्या उपयोग? स्वामी के नष्ट होने पर अनुचर स्वयं नष्ट हो जाते हैं। स्वामी की रक्षा करना उनका धर्म है।

मद्रोत्कट–यदि तुम्हारा यही विश्वास है तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं।

शेर से आश्वासन पाकर गीदड़ अपने अन्य अनुचर साथियों के पास आया और उन्हें लेकर फिर शेर के सामने उपस्थित हो गया। वे सब अपने शरीर के दान से स्वामी की भूख शान्त करने आए थे। गीदड़ उन्हें यह वचन देकर लाया था कि शेर शेष सब पशुओं को छोड़कर ऊँट को ही मारेगा।

सबसे पहले कौवे ने शेर के सामने जाकर कहा–स्वामी! मुझे खाकर अपनी जान बचाइए, जिससे मुझे स्वर्ग मिले। स्वामी के लिए प्राण देने वाला स्वर्ग जाता है, वह अमर हो जाता है।

गीदड़ ने कौवे से कहा–अरे कौवे, तू इतना छोटा है कि तेरे खाने से स्वामी की भूख बिल्कुल शान्त नहीं होगी। तेरे शरीर में माँस ही कितना है जो कोई खाएगा? मैं अपना शरीर स्वामी को अर्पण करता हूँ।

गीदड़ ने जब अपना शरीर भेंट किया तो बाघ ने उसे हटाते हुए कहा–तू भी बहुत छोटा है। तेरे नख इतने बड़े और विषैले हैं कि जो खाएगा उसे ज़हर चढ़ जाएगा। इसीलिए तू अभक्ष्य है। मैं अपने को स्वामी को अर्पण करूँगा। मुझे खाकर वे अपनी भूख शान्त करें।

उसे देखकर क्रथनक ने सोचा कि वह भी अपने शरीर

को अर्पण कर दे। जिन्होंने ऐसा किया था, उसमें से शेर ने किसी को भी नहीं मारा था, इसलिए उसे भी मरने का डर नहीं था। यही सोचकर क्रथनक ने भी आगे बढ़कर बाघ को एक ओर हटा दिया और अपने शरीर को शेर को अर्पण किया।

तब शेर का इशारा पाकर गीदड़, चीता, बाघ, आदि पशु ऊँट पर टूट पड़े और उसका पेट फाड़ डाला। सबने उसके माँस से अपनी भूख शान्त की।

संजीवक ने दमनक से कहा–तभी मैं कहता हूँ कि छल-कपट से भरे वचन सुनकर किसी को उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए, और यह कि राजा के अनुचर जिसे मरवाना चाहें उसे किसी न किसी उपाय से मरवा ही देते हैं। निस्सन्देह किसी नीच ने मेरे विरुद्ध राजा पिंगलक को उकसा दिया है। अब दमनक भाई! मैं एक मित्र के नाते तुझसे पूछता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए।

दमनक–मैं तो समझता हूँ कि ऐसे स्वामी की सेवा का कोई लाभ नहीं है। अच्छा है कि तुम यहाँ से जाकर किसी दूसरे देश में घर बनाओ। ऐसी उल्टी राह पर चलने वाले स्वामी का परित्याग करना ही अच्छा है।

संजीवक–दूर जाकर भी अब छुटकारा नहीं है। बड़े लोगों से शत्रुता लेकर कोई कहीं शान्ति से नहीं बैठ सकता। अब तो युद्ध करना ही ठीक जंचता है। युद्ध में एक बार ही मौत मिलती है, किन्तु शत्रु से डरकर भागने वाला तो प्रतिक्षण चिन्तित रहता है। उस चिन्ता से एक बार की मृत्यु कहीं अच्छी है।

दमनक ने जब संजीवक को युद्ध के लिए तैयार देखा तो वह सोचने लगा, कहीं ऐसा न हो, यह अपने पैने सींगों

से स्वामी पिंगलक का पेट फाड़ दे। ऐसा हो गया तो महान् अनर्थ हो जाएगा। इसीलिए वह फिर संजीवक को देश छोड़कर जाने की प्रेरणा करता हुआ बोला–मित्र ! तुम्हारा कहना भी सच है। किन्तु स्वामी और नौकर के युद्ध से क्या लाभ? विपक्षी बलवान् हो तो क्रोध को पी जाना ही बुद्धिमत्ता है। बलवान् से लड़ना अच्छा नहीं। अन्यथा उसकी वही गति होती है जो टिटिहरे से लड़कर समुद्र की हुई थी।

संजीवक ने पूछा–कैसे ?

दमनक ने तब टिटिहरे की यह कथा सुनाई :

9. घड़े-पत्थर का न्याय

बलवन्तं रिपु दृष्ट्वा न वाऽऽमान प्रकोपयेत्

शत्रु अधिक बलशाली हो तो क्रोध प्रकट न करे, शान्त हो जाए।

समुद्र तट के एक भाग में एक टिटिहरी का जोड़ा रहता था। अण्डे देने से पहले टिटिहरी ने अपने पति को किसी सुरक्षित प्रदेश की खोज करने के लिए कहा। टिटिहरे ने कहा–यहाँ सभी स्थान पर्याप्त सुरक्षित हैं, तू चिन्ता न कर।

टिटिहरी–समुद्र में जब ज्वार आता है तो उसकी लहरें मतवाले हाथी को भी खींचकर ले जाती हैं, इसलिए हमें इन लहरों से दूर कोई स्थान देख रखना चाहिए।

टिटिहरा–समुद्र इतना दुस्साहसी नहीं है कि वह मेरी सन्तान को हानि पहुँचाए। वह मुझसे डरता है। इसलिए तू नि:शंक होकर यहीं तट पर अण्डे दे।

समुद्र ने टिटिहरी की ये बातें सुन लीं। उसने सोचा, यह टिटिहरा बहुत अभिमानी है। आकाश की ओर टाँगे करके भी इसीलिए सोता है कि इन टाँगों पर गिरते हुए आकाश को थाम लेगा। इसका अभिमान भंग होना चाहिए। यह सोचकर उसने ज्वार आने पर टिटिहरी के अण्डों को लहरों में बहा दिया।

टिटिहरी जब दूसरे दिन आई तो अण्डों को बहता देखकर रोती-बिलखती टिटिहरे से बोली–मूर्ख! मैंने पहले ही कहा था कि समुद्र की लहरें इन्हें बहा ले जाएँगी, किन्तु तूने अभिमानवश मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। अपने प्रियजनों के कथन पर भी जो कान नहीं देता उसकी वही दुर्गति होती है जो उस मूर्ख कछुए की हुई थी। जिसने रोकते-रोकते भी मुख खोल दिया था।

टिटिहरे ने टिटिहरी से पूछा–कैसे ?

टिटिहरे ने तब मूर्ख कछुए की कहानी सुनाई :

10. हितैषी की सीख मानो

सुहृदां हितकामानां न करोतीह यो वच:।
सकूम इव दुर्बुद्धि : काष्ठाद् भ्रष्टो विनश्यति।

हितचिन्तक मित्रों की बात पर जो ध्यान नहीं देता, वह मूर्ख

नष्ट हो जाता है।

एक तालाब में कम्बुग्रीव नाम का कछुआ रहता था। उसी तालाब में प्रति दिन आने वाले दो हंस, जिनका नाम संकट और विकट था, उसके मित्र थे। तीनों में इतना स्नेह था कि रोज़ शाम होने तक तीनों मिलकर बड़े प्रेम से कथालाप किया करते थे।

कुछ दिन बाद वर्षा के अभाव में वह तालाब सूखने लगा। हंसों को यह देखकर कछुए से बड़ी सहानुभूति हुई। कछुए ने भी आँखों से आँसू भरकर कहा–अब यह जीवन अधिक दिन का नहीं है। पानी के बिना इस तालाब में मेरा मरण निश्चित है। तुमसे कोई उपाय बन पाए तो करो। विपत्ति में धैर्य ही काम आता है। यत्न से सब काम सिद्ध हो जाते हैं।

बहुत विचार के बाद यह निश्चय किया गया कि दोनों हंस जंगल से एक बाँस की छरी लाएँगे। कछुआ उस छड़ी के मध्यभाग को मुख से पकड़ लेगा। हंसों का यह काम होगा कि वे दोनों ओर से छड़ी को मज़बूती से पकड़कर दूसरे तालाब के किनारे तक उड़ते हुए पहुँचेंगे।

यह निश्चय होने के बाद दोनों हँसों ने कछुए को कहा– मित्र ! हम तुझे इस प्रकार उड़ते हुए दूसरे तालाब तक ले जाएँगे; किन्तु एक बात का ध्यान रखना। कहीं बीच में लकड़ी को छोड़ मत देना, नहीं तो तू गिर जाएगा। कुछ भी हो, पूरा मौन बनाए रखना। प्रलोभनों की ओर ध्यान न देना। यही तेरी परीक्षा का मौका है।

हंसों ने लकड़ी को उठा लिया। कछुए ने उसे मध्यभाग से दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया। इस तरह निश्चित

योजना के अनुसार वे आकाश में उड़े जा रहे थे कि कछुए ने नीचे झुककर उन नागरिकों को देखा जो गरदन उठाकर आकाश में हंसों के बीच किसी चक्राकार वस्तु को उड़ता देखकर कौतूहलवश शोर मचा रहे थे।

उस शोर को सुनकर कम्बुग्रीव से नहीं रहा गया। वह बोल उठा–अरे! यह शोर कैसा है?

यह कहने के लिए मुँह खोलने के साथ ही कछुए के मुख से लकड़ी की छड़ छूट गई और कछुआ जब नीचे गिरा तो लोगों ने उसकी बोटी-बोटी कर डाली।

टिटिहरी ने यह कहानी सुनाकर कहा–इसीलिए मैं कहती हूँ कि अपने हितचिन्तकों की राय पर न चलने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है। बल्कि बुद्धिमानों में भी वही बुद्धिमान सफल होते हैं जो बिना आई विपत्ति का पहले से ही उपाय सोचते हैं, और वे भी उसी प्रकार सफल होते हैं जिनकी बुद्धि तत्काल अपनी रक्षा का उपाय सोच लेती है। पर 'जो होगा,देखा जाएगा, कहने वाले शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

टिटिहरे ने पूछा–यह कैसे?

टिटिहरी ने कहा–सुनो :

11. दूरदर्शी बनो

यद् भविष्यो विनश्यति

'जो होगा देखा जाएगा' कहने वाले नष्ट हो जाते हैं।

एक तालाब में तीन मछलियाँ थीं :अनागतविधाता, प्रत्युत्पन्नमति और यद्भविष्य। एक दिन मछियारों ने उन्हें देख लिया और सोचा, इस तालाब में खूब मछलियाँ हैं। आज तक कभी इसमें जाल भी नहीं डाला है, इसलिए यहाँ खूब मछलियाँ हाथ लगेंगी ।–उस दिन शाम अधिक हो गई थी, खाने के लिए मछलियाँ भी पर्याप्त मिल चुकी थीं, अत: अगले दिन सुबह ही वहाँ आने का निश्चय करके वे चले गए।

अनागतविधाता नाम की मछली ने उसकी बात सुनकर सब मछलियों को बुलाया और कहा–आपने उन मछियारों की बात सुन ली है। रातोंरात ही हमें यह तालाब छोड़कर दूसरे तालाब में चले जाना चाहिए। एक क्षण की भी देर करना उचित नहीं।

प्रत्युत्पन्नमति ने भी उसकी बात का समर्थन किया। उसने कहा–परदेश में जाने का डर प्राय: सबको नपुंसक बना देता है। 'अपने ही कुएँ का जल पिएँगे'–यह कहकर जो लोग जन्म-भर खारा पानी पीते हैं, वे कायर होते हैं। स्वदेश का यह राग वही गाते हैं, जिनकी कोई और गति नहीं होती।

उन दोनों की बातें सुनकर यद्भवति नाम की मछली हँस पड़ी। उसने कहा–किसी राह जाते आदमी के वचन-मात्र से डरकर हम अपने पूर्वजों के देश को नहीं छोड़ सकते। दैव अनुकूल होगा तो हम यहाँ भी सुरक्षित रहेंगे, प्रतिकूल होगा तो अन्यत्र जाकर भी किसी के जाल में फँस जाएँगे। मैं तो नहीं जाती, तुम्हें जाना हो जो जाओ।

उसका आग्रह देखकर अनागतविधाता और प्रतयुत्पन्नमति दोनों सपरिवार पास के तालाब में चली गईं। यद्भविष्य अपने परिवार के साथ उसी तालाब में

रही। अगले दिन सुबह मछियारों ने उस तालाब में जाल फैलाकर सब मछलियों को पकड़ लिया।

इसलिए मैं कहती हूँ कि 'जो होगा देखा जाएगा' की नीति विनाश की ओर ले जाती है। हमें प्रत्येक विपत्ति का उचित उपाय करना चाहिए।

यह बात सुनकर टिटिहरे ने टिटिहरी से कहा–मैं यद्भविष्य जैसा मूर्ख और निष्कर्म नहीं हूँ। मेरी बुद्धि का चमत्कार देखती जा। मैं अभी अपनी चोंच से पानी बाहर निकालकर समुद्र को सुखा देता हूँ।

टिटिहरी–समुद्र के साथ तेरा बैर तुझे शोभा नहीं देता। इस पर क्रोध करने से क्या लाभ? अपनी शक्ति देखकर हमें किसी से बैर करना चाहिए, नहीं तो आग में जलनेवाले पतंगे जैसी गति होगी।

टिटिहरा फिर भी अपनी चोंच से समुद्र को सुखा डालने की डींगे मारता रहा। तब टिटिहरी ने फिर उसे मना करते हुए कहा कि जिस समुद्र को गंगा-यमुना जैसी सैकड़ों नदियाँ निरन्तर पानी से भर रही हैं, उसे तू अपनी बूंद-भर उठानेवाली चोंच से कैसे खाली कर देगा?

टिटिहरा तब भी अपने हठ पर तुला रहा। तब टिटिहरी ने कहा–यदि तूने समुद्र को सुखाने का हठ ही कर लिया है तो अन्य पक्षियों की भी सलाह लेकर काम कर। कई बार छोटे-छोटे प्राणी मिलकर अपने से बहुत बड़े जीव को भी हरा देते हैं; जैसे चिड़िया, कठफोड़े और मेढक ने मिलकर हाथी को मार दिया था।

टिटिहरे ने पूछा–कैसे ?

टिटिहरी ने तब चिड़िया और हाथी की यह कहानी सुनाई :

12. एक और एक ग्यारह

बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जय:।

छोटे और निर्बल भी संख्या में बहुत होकर दुर्जेय हो जाते हैं।

जंगल में वृक्ष की एक शाखा पर चिड़ा-चिड़ी का जोड़ा रहता था। उनके अण्डे भी उसी शाखा पर बने घोंसले में थे। एक दिन मतवाला हाथी वृक्ष की छाया में विश्राम करने आया। वहाँ उसने अपनी सूंड़ में पकड़कर वही शाखा तोड़ दी जिस पर चिड़ियों का घोंसला था। अण्डे ज़मीन पर गिरकर टूट गए।

चिड़िया अपने अण्डों के टूटने से बहुत दु:खी हो गई। उसका विलाप सुनकर उसका मित्र कठफोड़ा भी वहाँ आ गया। उसने शोकातुर चिड़ा-चिड़ी को धीरज बँधाने का बहुत यत्न किया, किन्तु उसका विलाप शान्त नहीं हुआ। चिड़िया ने कहा–यदि तू हमारा सच्चा मित्र है तो मतवाले हाथी से बदला लेने में हमारी सहायता कर। उसको मारकर ही हमारे मन को शान्ति मिलेगी।

कठफोड़ ने कुछ सोचने के बाद कहा–यह काम हम दोनों का ही नहीं है। इसमें दूसरों से भी सहायता लेनी पड़ेगी। एक मक्खी मेरी मित्र है; उसकी आवाज़ बहुत सुरीली है, उसे भी बुला लेता हूँ।

मक्खी ने भी जब कठफोड़े और चिड़िया की बात सुनी तो वह मतवाले हाथी को मारने में उनको सहयोग देने को तैयार हो गई। किन्तु उसने भी कहा कि यह काम हम तीन का ही नहीं, हमें औरों की भी सहायता ले लेनी चाहिए। मेरा मित्र एक मेढक है, उसे भी बुला लाऊँ।

तीनों ने जाकर मेघनाद नाम के मेढक को अपनी दु:ख भरी कहानी सुनाई। मेढक उनकी बात सुनकर मतवाले हाथी के विरुद्ध षड्यन्त्र में शामिल हो गया। उसने कहा– तभी तो मैं कहती हूँ कि छोटे और निर्बल भी मिल-जुलकर बड़े-बड़े जानवरों को मार सकते हैं।

टिटिहरा–अच्छी बात है। मैं भी दूसरे पक्षियों की सहायता से समुद्र को सुखाने का यत्न करूँगा।

यह कहकर उसने बगुले, सारस, मोर आदि अनेक पक्षियों को बुलाकर अपनी दु:ख-कथा सुनाई। उन्होंने कहा–हम तो अशक्त हैं; किन्तु हमारा राजा गरुड़ अवश्य इस सम्बन्ध में हमारी सहायता कर सकता है। तब सब पक्षी मिलकर गरुड़ के पास जाकर रोने और चिल्लाने लगे–गरुड़ महाराज! आपके रहते पक्षिकुल पर समुद्र ने यह अत्याचार कर दिया। हम इसका बदला चाहते हैं। आज उसने टिटिहरी के अण्डे नष्ट किए हैं, कल वह दूसरे पक्षियों के अण्डों का बहा ले जाएगा। इस अत्याचार की रोकथाम होनी चाहिए, अन्यथा सम्पूर्ण पक्षिकुल नष्ट हो जाएगा।

गरुड़ ने पक्षियों का रोना सुनकर उनकी सहायता करने का निश्चय किया। उसी समय उसके पास भगवान् विष्णु का दूत आया। उस दूत द्वारा भगवान् विष्णु ने उसे सवारी के लिए बुलाया था। गरुड़ ने दूत से क्रोधपूर्वक कहा कि वह विष्णु भगवान् को कह दे कि वे दूसरी सवारी का

प्रबन्ध कर लें। दूत ने गरुड़ के क्रोध का कारण पूछा तो गरुड़ ने समुद्र के अत्याचार की कथा सुनाई!

दूत के मुख से गरुड़ के क्रोध की कहानी सुनकर भगवान् विष्णु स्वयं गरुड़ के घर गए। वहाँ पहुँचने पर गरुड़ ने प्रणामपूर्वक विनम्र शब्दों में कहा :

भगवान्! आपके आश्रय का अभिमान करके समुद्र ने मेरे साथी पक्षियों के अण्डों का अपहरण कर लिया है। इस तरह मुझे भी अपमानित किया है। मैं समुद्र से इस अपमान का बदला लेना चाहता हूँ।

भगवान् विष्णु बोले–गरुड़! तुम्हारा क्रोध युक्तियुक्त है। समुद्र को ऐसा काम नहीं करना चाहिए था। चलो, मैं समुद्र से उन अण्डों को वापस लेकर टिटिहरी को दिलवा देता हूँ। उसके बाद हमें अमरावती जाना है।

तब भगवान् ने अपने धनुष पर आग्नेय बाण को चढ़ाकर समुद्र से कहा–दुष्ट, अभी सब उन अण्डों को वापस दे दे, नहीं तो तुझे क्षण-भर में सुखा दूँगा।

भगवान् विष्णु के भय से समुद्र ने उसी क्षण अण्डे वापस दे दिए।

दमनक ने इन कथाओं को सुनाने के बाद संजीवक से कहा–इसीलिए मैं कहता हूँ कि शत्रुपक्ष का बल जानकर ही युद्ध के लिए तैयार होना चाहिए।

संजीवक–दमनक ! यह बात तो सच है, किन्तु मुझे यह कैसे पता लगेगा कि पिंगलक के मन में मेरे लिए हिंसा के भाव हैं। आज तक वह मुझे सदा स्नेह की दृष्टि से देखता रहा है। उसकी वक्रदृष्टि का मुझे कोई ज्ञान नहीं है। मुझे उसके लक्षण बतला दो तो मैं उन्हें जानकर आत्मरक्षा के लिए तैयार हो जाऊँगा।

दमनक–उन्हें जानना कुछ भी कठिन नहीं है। यदि उसके मन में तुम्हें मारने का पाप होगा तो उसकी आँखें लाल हो जाएँगी, भवें चढ़ जाएँगी और वह होंठों को चाटता हुआ तुम्हारी ओर क्रूर दृष्टि से देखेगा। अच्छा तो यह है कि तुम रातोंरात चुपके से चले जाओ। आगे तुम्हारी इच्छा।

यह कहकर दमनक अपने साथी करटक के पास आया। करटक ने उससे भेंट करते हुए पूछा–कहो दमनक! कुछ सफलता मिली तुम्हें अपनी योजना में?

दमनक–मैंने तो नीतिपूर्वक जो कुछ भी करना उचित था, कर दिया, आगे सफलता दैव के अधीन है। पुरुषार्थ करने के बाद भी यदि कार्यसिद्धि न हो तो हमारा दोष नहीं।

करटक–तेरी क्या योजना है? किस तरह नीतियुक्त काम किया है तूने? मुझे भी बता।

करटक–मैंने झूठ बोलकर दोनों को एक-दूसरे का ऐसा बैरी बना दिया है कि वे भविष्य में कभी एक-दूसरे का विश्वास नहीं करेंगे।

करटक–यह तूने अच्छा नहीं किया, मित्र! दो स्नेही हृदयों में द्वेष का बीज बोना बुरा काम है।

दमनक–करटक! तू नीति की बातें नहीं जानता, तभी ऐसा कहता है। संजीवक ने हमारे मन्त्रिपद को हथिया लिया। वह हमारा शत्रु था। शत्रु को परास्त करने में धर्म-अधर्म नहीं देखा जाता। आत्मरक्षा सबसे बड़ा धर्म है। स्वार्थ-साधन ही सबसे महान कार्य है। स्वार्थ-साधन करते हुए कपट-नीति से ही काम लेना चाहिए, जैसे चतुरक ने लिया था।

करटक ने पूछा–कैसे ?

दमनक ने तब चतुरक गीदड़ और शेर की यह कहानी

13. कुटिल नीति का रहस्य

परस्य पीडनं कुर्वन् स्वार्थसिद्धिं च पण्डित:
गूढबुद्धिर्न लक्ष्मेत वने चतुरको यथा॥

स्वार्थ-साधन करते हुए कपट से भी काम लेना पड़ता है।

किसी जंगल में वज्रदंष्ट्र नाम का शेर रहता था। उसके दो अनुचर, चतुरक गीदड़ और क्रव्यमुख भेड़िया, हर समय उसके साथ रहते थे। एक दिन शेर ने जंगल में बैठी हुई ऊंटनी को मारा। ऊंटनी के पेट से एक छोटा-सा ऊँट का बच्चा निकला। शेर को उस बच्चे पर दया आई। घर लाकर उसने बच्चे को कहा–अब मुझसे डरने की कोई बात नहीं। मैं तुझे नहीं मारूँगा। तू जंगल में आनन्द से विहार कर। ऊँट के बच्चे के कान शंकु (कील) जैसे थे इसलिए उनका नाम शेर ने शंकुकर्ण रख दिया। वह भी शेर के अन्य अनुचरों के समान सदा शेर के साथ रहता था। जब वह बड़ा हो गया तब भी वह शेर का मित्र बना रहा। एक क्षण के लिए भी वह शेर को छोड़कर नही जाता था।

एक दिन उस जंगल में एक मतवाला हाथी आ गया। उससे शेर की ज़बर्दस्त लड़ाई हुई। इस लड़ाई में शेर इतना घायल हो गया कि उसके लिए एक कदम आगे चलना भी भारी हो गया। अपने साथियों से उसने कहा कि तुम कोई

ऐसा शिकार ले आओ जिसे मैं यहाँ बैठा-बैठा ही मार दूँ। तीनों साथी शेर की आज्ञानुसार शिकार की तलाश करते रहे; लेकिन बहुत यत्न करने पर भी कोई शिकार हाथ नहीं आया।

चतुरक ने सोचा, यदि शंकुकर्ण को मरवा दिया जाए तो कुछ दिन की निश्चिन्तता हो जाए। किन्तु शेर ने उसे अभय-वचन दिया है; कोई युक्ति ऐसी निकालनी चाहिए कि वह वचन-भंग किए बिना इसे मारने को तैयार हो जाए।

अन्त में चतुरक ने एक युक्ति सोच ली। शंकुकर्ण से वह बोला–शंकुकर्ण मैं तुझे एक बात तेरे लाभ की ही कहता हूँ। स्वामी का इसमें कल्याण हो जाएगा। हमारा स्वामी शेर कई दिन से भूखा है। उसे यदि तू अपना शरीर दे दे तो वह कुछ दिन बाद दुगुना होकर तुझे मिल जाएगा और शेर की भी तृप्ति हो जाएगी।

शंकुकर्ण–मित्र! शेर की तृप्ति में तो मेरी भी प्रसन्नता है। स्वामी को कह दो कि मैं इसके लिए तैयार हूँ। किन्तु इस सौदे में धर्म हमारा साक्षी होगा।

इतना निश्चित होने के बाद वे सब शेर के पास गए। चतुरक ने शेर से कहा–स्वामी! शिकार तो कोई भी हाथ नहीं आया। सूर्य भी अस्त हो गया। अब एकही उपाय है; यदि आप शंकुकर्ण को इस शरीर के बदले द्विगुण शरीर देना स्वीकार करें तो वह यह शरीर ऋण-रूप में देने को तैयार है।

शेर–मुझे यह व्यवहार स्वीकार है। हम धर्म को साक्षी रखकर यह सौदा करेंगे। शंकुकर्ण अपने शरीर को ऋण-रूप में हमें देगा तो हम उसे बाद में द्विगुण शरीर देंगे।

तब सौदा होने के बाद शेर के इशारे पर गीदड़ और भेड़ियों ने ऊँट को मार दिया।

वज्रदंष्ट्र शेर ने तब चतुरक से कहा–चतुरक! मैं नदी में स्नान करके आता हूं, तू यहाँ इसकी रखवाली करना।

शेर के जाने के बाद चतुरक ने सोचा–कोई युक्ति ऐसी होनी चाहिए कि वह अकेला ही ऊँट को खा सके। यह सोचकर वह क्रव्यमुख से बोला–मित्र ! तू बहुत भूखा है, इसलिए तू शेर के आने से पहले ही ऊँट को खाना शुरु कर दे। मैं शेर के सामने तेरी निर्दोषता सिद्ध कर दूँगा, चिन्ता न कर।

अभी क्रव्यमुख ने दाँत गड़ाए ही थे कि चतुरक चिल्ला उठा–स्वामी आ रहे हैं, दूर हट जा।

शेर ने आकर देखा तो ऊँट पर भेड़िये के दाँत लगे थे। उसने क्रोध से भवें तानकर पूछा–किसने ऊँट को जूठा किया है!

क्रव्यमुख चतुरक की ओर देखने लगा। चतुरक बोला–दुष्ट, स्वयं माँस खाकर अब मेरी ओर क्यों देखता है? अब अपने लिए का दण्ड भोग।

चतुरक की बात सुनकर भेड़िया शेर के डर से उसी क्षण भाग गया।

थोड़ी देर में उधर कुछ दूरी पर ऊँटों का एक काफिला आ रहा था। ऊँटों के गले में घण्टियाँ बँधी हुई थीं। घण्टियों के शब्द से जंगल का आकाश गूँज रहा था। शेर ने पूछा–चतुरक ! यह कैसा शब्द है? मैं तो इसे पहली बार ही सुन रहा हूँ, पता तो करो।

चतुरक बोला–स्वामी ! आप देर न करें, जल्दी से चले जाएँ।

शेर–आखिर बात क्या है? इतना भयभीत क्यों करता है मुझे।

चतुरक–स्वामी! यह ऊँटों का दल है। धर्मराज आप पर बहुत क्रुद्ध हैं। आपने उनकी आज्ञा के बिना उन्हें साक्षी बनाकर अकाल में ही ऊँट के बच्चे को मार डाला है। अब वह सौ ऊँटों को, जिनमें शंकुकर्ण के पुरखे भी शामिल हैं, लेकर आपसे बदला लेने आया है। धर्मराज के विरुद्ध लड़ना युक्तियुक्त नहीं। आप हो सके तो, तुरन्त भाग जाइए।

शेर ने चतुरक के कहने पर विश्वास कर लिया! धर्मराज से डरकर वह मरे हुए ऊँट को वैसा ही छोड़कर दूर भाग गया।

दमनक ने यह कथा सुनाकर कहा–इसलिए मैं तुम्हें कहता हूँ कि स्वार्थ साधन में छल-बल सबसे काम लें।

दमनक के जाने के बाद संजीवक ने सोचा, मैंने यह अच्छा नहीं किया जो शाकाहारी होने पर एक माँसाहारी से मैत्री की। किन्तु अब क्या करूँ? क्यों न अब फिर पिंगलक की शरण में जाकर उससे मित्रता बढ़ाऊँ? दूसरी जगह अब मेरी गति भी कहाँ है?

यही सोचता हुआ वह धीरे-धीरे शेर के पास चला। वहाँ जाकर उसने देखा कि पिंगलक शेर के मुँह पर वही भाव अंकित थे जिसका वर्णन दमनक ने कुछ समय पहले किया था। पिंगलक को इतना क्रुद्ध देखकर संजीवक आज ज़रा दूर हटकर बिना प्रणाम किए बैठ गया।पिंगलक ने भी आज संजीवक के चेहरे पर वही भाव अंकित देखे जिनकी सूचना दमनक ने पिंगलक को दी थी। दमनक की चेतावनी का स्मरण करके पिंगलक संजीवक से कुछ भी पूछे बिना उस पर टूट पड़ा। संजीवक इस अचानक आक्रमण के लिए तैयार नहीं था। किन्तु जब उसने देखा कि शेर उसे मारने को

तैयार है तो वह भी सींगों को तानकर अपनी रक्षा के लिए तैयार हो गया।

उन दोनों को एक-दूसरे के विरुद्ध भयंकरता से युद्ध करते देखकर करटक ने कहा : दमनक! तूने दो मित्रों को लड़वाकर अच्छा नहीं किया। तुझे सामनीति से काम लेना चाहिए था। अब यदि शेर का वध हो गया तो हम क्या करेंगे? सच तो यह है कि तेरे जैसा नीच स्वभाव का मन्त्री कभी अपने स्वामी का कल्याण नहीं कर सकता। अब भी कोई उपाय है तो कर। तेरी सब प्रवृत्तियाँ केवल विनाशोन्मुख हैं। जिस राज्य का तू मन्त्री होगा, वहाँ भद्र सज्जन व्यक्तियों का प्रवेश ही नहीं होगा। अथवा अब तुझे उपदेश देने का क्या लाभ? उपदेश भी पात्र को दिया जाता है। तू उसका पात्र नहीं है, तुझे उपदेश देना व्यर्थ है। अन्यथा कहीं मेरी हालत भी सूचीमुख चिड़ियों की तरह न हो जाए।

दमनक ने पूछा–सूचीमुख चिड़िया कौन थी?

करटक ने तब सूचीमुख चिड़िया की यह कहानी सुनाई–

14. सीख न दीजे बानरा

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।

उपदेश से मूर्खों का क्रोध और भी भड़क उठता है, शान्त नहीं होता।

किसी पर्वत के एक भाग में बन्दरों का दल रहता था। एक दिन हेमन्त ऋतु के दिनों में वहाँ इतनी बर्फ पड़ी और ऐसी हिम-वर्षा हुई कि बन्दर सर्दी के मारे ठिठुर गए।

कुछ बन्दर लाल फलों को ही अग्नि-कण समझकर उन्हें फूँकें मार-मार कर सुलगाने की कोशिश करने लगे।

सूचीमुख पक्षी ने तब उन्हें वृथा प्रयत्न से रोकते हुए कहा–ये आग के शोले नहीं, गुञ्जाफल हैं। इन्हें सुलगाने की व्यर्थ चेष्टा क्यों करते हो? अच्छा यह है कि कहीं गुफा-कन्दरा में चले जाओ। तभी सर्दी से रक्षा होगी।

बन्दरों में एक बूढ़ा बन्दर भी था। उसने कहा–सूचीमुख इनको उपदेश न दे। ये मूर्ख हैं, तेरे उपदेश को नहीं मानेंगे, बल्कि तुझे मार डालेंगे।

वह बन्दर कह ही रहा था कि एक बन्दर ने सूचीमुख को उसके पंखों से पकड़ कर झकझोर दिया।

–इसीलिए मैं कहता हूँ कि मूर्ख को उपदेश देकर हम उसे शान्त नहीं करते, और भी भड़काते हैं। जिस-तिसको उपदेश देना स्वयं मूर्खता है। मूर्ख बन्दर ने उपदेश देने वाली चिड़ियों का घोंसला तोड़ दिया था।

दमनक ने पूछा–कैसे ?

करटक ने तब बन्दर और चिड़ियों की यह कहानी सुनाई :

15. शिक्षा का पात्र

उपदेशो न दातव्यो यादृशे तादृशे जने।

जिस-तिसको उपदेश देना उचित नहीं।

किसी जंगल के एक घने वृक्ष की शाखा पर चिड़ा-चिड़ी का एक जोड़ा रहता था। अपने घोंसले में दोनों बड़े सुख से रहते थे। सर्दियों का मौसम था। उस समय एक बन्दर बर्फीली हवा और बरसात में ठिठुरता हुआ उस वृक्ष की शाखा पर आ बैठा। जाड़े के मारे उसके दाँत कटकटा रहे थे। उसे देख चिड़िया ने कहा–अरे, तुम कौन हो? देखने में तो तुम्हारा चेहरा आदमियों का सा है; हाथ-पैर भी हैं तुम्हारे। फिर भी तुम यहाँ बैठे हो, घर बनाकर क्यों नहीं रहते?

बन्दर बोला–अरी, तुझसे चुप नहीं रह जाता? तू अपना काम कर, मेरा उपहास क्यों करती है?

चिड़िया फिर भी कुछ कहती गई! वह चिढ़ गया। क्रोध में आकर उसने चिड़िया के उस घोंसले को तोड़-फोड़ डाला।

करटक ने कहा–इसीलिए मैं कहता था। जिस-तिसको उपदेश नहीं देना चाहिए। किन्तु तुझपर इसका प्रभाव नहीं पड़ा। तुझे शिक्षा देना भी व्यर्थ है। बुद्धिमान को दी हुई शिक्षा का ही फल होता है। मूर्ख को दी हुई शिक्षा का फल कई बार उलटा निकल आता है, जिस तरह पापबुद्धि नाम के मूर्ख पुत्र ने विद्वता के जोश में पिता की हत्या कर दी थी।

दमनक ने पूछा–कैसे ?

करटक ने तब धर्मबुद्धि-पापबुद्धि नाम के दो मित्र की कथा सुनाई :

16. मित्र-द्रोह का फल

किं करोत्येव पाण्डित्यमस्थाने विनियोजितम्।

अयोग्य को मिले ज्ञान का फल विपरीत ही होता है।

किसी स्थान पर धर्मबुद्धि और पापबुद्धि नाम के दो मित्र रहते थे। एक दिन पापबुद्धि ने सोचा कि धर्मबुद्धि की सहायता से विदेश में जाकर धन पैदा किया जाए दोनों ने देश-देशान्तरों में घूमकर प्रचुर धन पैदा किया। जब वे वापस आ रहे थे, तो गाँव के पास आकर पापबुद्धि ने सलाह दी कि इतने धन को बन्धु-बान्धवों के बीच नहीं ले जाना चाहिए। इसे देखकर ईर्ष्या होगी, लोभ होगा। किसी न किसी बहाने वे बाँटकर खाने का यत्न करेंगे। इसीलिए इस धन का बड़ा भाग ज़मीन में गाड़ देते हैं। जब जरूरत होगी लेते रहेंगे।

धर्मबुद्धि यह बात मान गया। ज़मीन में गड्ढा खोदकर दोनों ने अपना संचित धन वहाँ रख दिया और गाँव में चले आए।

कुछ दिन बाद पापबुद्धि आधी रात को उसी स्थान पर जाकर सारा धन खोद लाया और ऊपर से मिट्टी डालकर गड्ढा भरकर चला आया।

दूसरे दिन वह धर्मबुद्धि के पास गया और बोला– मित्र ! मेरा परिवार बड़ा है। मुझे फिर कुछ धन की ज़रूरत

पड़ गई है। चलो, चलकर थोड़ा-थोड़ा और ले आएँ।

धर्मबुद्धि मान गया। दोनों ने आकर जब ज़मीन खोदी और वह बर्तन निकाला जिसमें धन रखा था, तो देखा कि वह खाली है। पापबुद्धि सिर पीटकर रोने लगा–मैं लुट गया, धर्मबुद्धि ने मेरा धन चुरा लिया। मैं मर गया, लुट गया...

दोनों अदालत में धर्माधिकारी के सामने पेश हुए। पापबुद्धि ने कहा–मैं गड्ढे के पास वाले वृक्षों को साक्षी मानने को तैयार हूँ। वे जिसे चोर कहेंगे, वह चोर माना जाएगा।

अदालत ने यह बात मान ली और निश्चय किया कि कल वृक्षों की साक्षी ली जाएगी और साक्षी पर ही निर्णय सुनाया जाएगा।

रात को पापबुद्धि ने अपने पिता से कहा–तुम अभी गड्ढे के पास वाले वृक्ष की खोखली जड़ में बैठ जाओ। जब धर्माधिकारी पूछे तो कह देना कि चोर धर्मबुद्धि है।

उसके पिता ने यही किया; वह सवेरे ही वहाँ जाकर बैठ गया।

धर्माधिकारी ने जब ऊँचे स्वर में पुकारा–हे वनदेवता! तुम्हीं साक्षी हो कि इन दोनों में चोर कौन है?

तब वृक्ष की जड़ में बैठे हुए पापबुद्धि के पिता ने कहा :

–धर्मबुद्धि चोर है, उसने ही धन चुराया है।

धर्माधिकारी तथा राजपुरुषों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अभी अपने धर्मग्रन्थों को देखकर निर्णय देने की तैयारी ही कर रहे थे कि धर्मबुद्धि ने उस वृक्ष को आग लगा दी, जहाँ से वह आवाज़ आई थी।

थोड़ी देर में पापबुद्धि का पिता आग से झुलसा हुआ

उस वृक्ष की जड़ में से निकला। उसने वनदेवता की साक्षी का सच्चा भेद प्रकट कर दिया।

तब राजपुरुषों ने पापबुद्धि को उसी वृक्ष की शाखाओं पर लटकाते हुए कहा कि मनुष्य का यह धर्म है कि वह उपाय की चिन्ता के साथ अपाय की भी चिन्ता करे। अन्यथा उसकी वही दशा होती है जो उन बगुलों की हुई थी। जिन्हें नेवले ने मार दिया था।

धर्मबुद्धि ने पूछा–कैसे ? राजपुरुषों ने कहा–सुनो :

17. करने से पहले सोचो

उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथाऽपायं च चिन्तयेत्।

उपाय की चिन्ता के साथ, तज्जन्य अपाय या दुष्परिणाम की भी चिन्ता कर लेनी चाहिए।

जंगल के एक बड़े वटवृक्ष की खोल में बहुत-से बगुले रहते थे। उसी वृक्ष की जड़ में एक साँप भी रहता था। वह बगुलों के छोटे-छोटे बच्चों को खा जाता था।

एक बगुला साँप द्वारा बार-बार बच्चों को खाए जाने पर बहुत दु:खी और विरक्त-सा होकर नदी के किनारे आ बैठा। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। उसे इस प्रकार दु:खमग्न देखकर एक केकड़े ने पानी से निकालकर उसे कहा–मामा, क्या बात है? आज रो क्यों रहे हो?

बगुले ने कहा–भैया ! बात यह है कि मेरे बच्चों

को साँप बार-बार खा जाता है। कुछ उपाय नहीं सूझता, किस प्रकार साँप का नाश किया जाए। तुम्हीं कोई उपाय बताओ।

केकड़े ने मन में सोचा, यह बगुला मेरा जन्मबैरी है। इसे ऐसा उपाय बताऊँगा जिससे साँप के नाश के साथ-साथ इसका भी नाश हो जाए। यह सोचकर वह बोला :

मामा, एक काम करो! माँस के कुछ टुकड़े लेकर नेवले के बिल के सामने डाल दो। इसके बाद बहुत-से टुकड़े उस बिल से शुरू करके साँप के बिल तक बिखेर दो। नेवला उन टुकड़ों को खाता-खाता साँप के बिल तक आ जाएगा। और वहाँ साँप को भी देखकर उसे मार डालेगा।

बगुले ने ऐसा ही किया। नेवले ने साँप को तो खा लिया, किन्तु साँप के बाद उस वृक्ष पर रहने वाले बगुलों को भी खा डाला।

बगुले ने उपाय सोचा, किन्तु उसने अन्य दुष्परिणाम नहीं सोचे। अपनी मूर्खता का फल उसे मिल गया। पापबुद्धि ने भी उपाय तो सोचा, किन्तु अपाय नहीं सोचा।

करटक ने कहा–इसी तरह दमनक! तूने भी उपाय तो किया, किन्तु अपाय की चिन्ता नहीं की। तू भी पापबुद्धि के समान ही मूर्ख है। तेरे जैसे पापबुद्धि के साथ रहना भी दोषपूर्ण है। आज से तू मेरे पास मत आना। जिस स्थान पर ऐसे-ऐसे अनर्थ हों, वहाँ से दूर ही रहना चाहिए। जहाँ चूहे मन-भर की तराजू को खा जाएँ वहाँ यह भी सम्भव है कि चील बच्चे को उठाकर ले जाए।

दमनक ने पूछा–कैसे ?

करटक ने तब लोहे की तराजू की एक कहानी सुनाई :

18. जैसे को तैसा

तुलां लोहसहस्रस्य यत्र खादन्ति मूषिका:।
राजंस्तत्र हरेच्छ्येनो बालकं नात्र संशय:॥

जहाँ मन-भर लोहे की तराजू को चूहे खा जाएँ
वहाँ की चील भी बच्चे को उठाकर ले जा सकती है।

एक स्थान पर जीर्णधन नाम का बनिये का लड़का रहता था। धन की खोज में उसने परदेश जाने का विचार किया। उसके घर में विशेष सम्पत्ति तो थी नहीं, केवल एक मन-भर लोहे की तराजू थी। उसे एक महाजन के पास धरोहर रख कर वह विदेश चला गया। विदेश से वापस आने के बाद उसने महाजन से अपनी धरोहर वापसी माँगी। महाजन ने कहा–वह लोहे की तराजू तो चूहों ने खा ली।

बनिया का लड़का समझ गया कि वह उसे तराजू देना नहीं चाहता। किन्तु अब उपाय कोई नहीं था। कुछ देर सोचकर उसने कहा–कोई चिन्ता नहीं। चूहों ने खा डाली तो चूहों का दोष है, तुम्हारा नहीं। तुम उसकी चिन्ता न करो।

थोड़ी देर बाद उस महाजन से कहा–मित्र ! नदी पर स्नान के लिए जा रहा हूँ। तुम अपने पुत्र धनदेव को मेरे साथ भेज दो, वह भी नहा आएगा।

महाजन बनिये की सज्जनता से बहुत प्रभावित था, इसलिए उसने तत्काल अपने पुत्र को उसके साथ नदी-स्थान के लिए भेज दिया।

बनिये ने महाजन के पुत्र को वहाँ से कुछ दूर ले जाकर

एक गुफा में बन्द कर दिया। गुफा के द्वार पर बड़ी-सी शिला रख दी, जिससे वह निकलकर भाग न पाए। फिर जब वह महाजन के घर आया तो महाजन ने पूछा–मेरा लड़का भी तो तेरे साथ स्नान के लिए गया था, वह कहाँ है।

बनिये ने कहा–उसे चील उठाकर ले गई।

महाजन–यह कैसे हो सकता है? कभी चील भी इतने बड़े बच्चे को उठा कर ले जा सकती है?

बनिया–भले आदमी! यदि चील बच्चे को उठाकर नहीं ले जा सकती, तो चूहे भी मन-भर भारी तराजू को नहीं खा सकते। तुझे बच्चा चाहिए तो तराजू निकालकर दे दे।

इसी तरह विवाद करते हुए दोनों राजमहल में पहुँचे। वहाँ न्यायाधिकारी के सामने महाजन ने अपनी दु:ख-कथा सुनाते हुए कहा कि इस बनिये ने मेरा लड़का चुरा लिया है।

धर्माधिकारी ने बनिये से कहा–इसका लड़का इसे दे दो।

बनिया बोला–महाराज ! उसे तो चील उठा ले गई है।

धर्माधिकारी–क्या कभी चील भी बच्चे को उठा ले जा सकती है?

बनिया–प्रभु! यदि मन-भर भारी तराजू को चूहे खा सकते हैं, तो चील भी बच्चे को उठाकर ले जा सकती है।

धर्माधिकारी के प्रश्न पर बनिए ने सब वृत्तान्त कह सुनाया।

कहानी कहने के बाद दमनक को करटक ने फिर कहा–तूने भी असम्भव को सम्भव बनाने का यत्न किया है। तूने स्वामी का हितचिंतक होके अहित कर दिया है। ऐसे हितचिंतक मूर्ख मित्रों की अपेक्षा अहितचिंतक बैरी अच्छे होते हैं। हिंतचिंतक मूर्ख बन्दर ने हितसम्पादन करते-करते

राजा का खून ही कर दिया था।

दमनक ने पूछा–कैसे ?

करटक ने तब बन्दर और राजा की यह कहानी सुनाई :

19. मूर्ख मित्र

पण्डितोऽपि वरं शत्रुर्न मूर्खो हितकारकः।

हितचिंतक मूर्ख की अपेक्षा अहितचिंतक बुद्धिमान अच्छा होता है।

किसी राजा के राजमहल में एक बन्दर सेवक के रूप में रहता था। वह राजा का बहुत विश्वासपात्र और भक्त था। अन्तःपुर में ही वह बेरोक-टोक जा सकता था।

एक दिन राजा सो रहा था और बन्दर पंखा झल रहा था, तो बन्दर ने देखा, एक मक्खी बार-बार राजा की छाती पर बैठी तो उसने पूरे बल से मक्खी पर तलवार का हाथ छोड़ दिया। मक्खी तो उड़ गई, किन्तु राजा की छाती तलवार की चोट से टुकड़े हो गई। राजा मर गया।

कथा सुनाकर करटक ने कहा–इसीलिए मैं मूर्ख मित्र की अपेक्षा विद्वान शत्रु को अच्छा समझता हूँ।

इधर दमनक-करटक बातचीत कर रहे थे, उधर शेर और बैल का संग्राम चल रहा था। शेर ने थोड़ी देर बाद बैल को इतना घायल कर दिया कि वह ज़मीन पर गिरकर मर गया।

मित्र-हत्या के बाद पिंगलक को बड़ा पश्चात्ताप हुआ, किन्तु दमनक ने आकर पिंगलक को फिर राजनीति का उपदेश दिया। पिंगलक ने दमनक को फिर अपना प्रधानमन्त्री बना लिया। दमनक की इच्छा पूरी हुई। पिंगलक दमनक की सहायता से राज-कार्य करने लगा।

॥ प्रथम तन्त्र समाप्त॥

प्रथम तन्त्र

मित्र सम्प्राप्ति

दक्षिण देश के एक प्रान्त में महिलारोप्य नाम का एक नगर था। वहाँ एक विशाल वटवृक्ष की शाखाओं पर लघुपतनक नाम का कौवा रहता था। एक दिन वह अपने आहार की चिन्ता में शहर की ओर चला ही था कि उसने देखा कि एक काले रंग, फटे पाँव और बिखरे बालों वाला यमदूत की तरह भयंकर व्याध उधर ही चला हा रहा है। कौवे को वृक्ष पर रहने वाले अन्य पक्षियों को भी चिन्ता थी। उन्हें व्याध के चंगुल से बचाने के लिए वह पीछे लौट पड़ा और वहाँ सब पक्षियों को सावधान कर दिया कि जब यह व्याध वृक्ष के पास भूमि पर अनाज के दाने बिखेरे, तब कोई भी पक्षी उन्हें चुगने के लालच से न जाए, उन दानों को कालकूट की तरह ज़हरीला समझें।

कौवा अभी यह कह ही रहा था कि व्याध ने वटवृक्ष के नीचे आकर दाने बिखेर दिए और स्वयं दूर जाकर झाड़ी के पीछे छिप गया। पक्षियों ने भी लघुपतनक का उपदेश

मानकर दाने नहीं चुगे। वे उन दानों को हलाहल विष की तरह मानते रहे।

किन्तु इस बीच में व्याध के सौभाग्य से कबूतरों का एक दल परदेश से उड़ता हुआ वहाँ आया। इसका मुखिया चित्रग्रीव नाम का कबूतर था। लघुपतनक के बहुत समझाने पर भी वह भूमि पर बिखरे हुए उन दानों को चुगने के लालच को न रोक सका। परिणाम यह हुआ कि वह अपने परिवार के साथियों समेत जाल में फँस गया। लोभ का यही परिणाम होता है। लोभ से विवेकशक्ति नष्ट हो जाती है। स्वर्णमय हरिण के लोभ से श्रीराम यह न सोच सके कि कोई हरिण सोने का नहीं हो सकता।

जाल में फँसने के बाद चित्रग्रीव ने अपने साथी कबूतरों को समझा दिया कि वे अब अधिक फड़फड़ाते या उड़ने की कोशिश न करें, नहीं तो व्याध उन्हें मार देगा। इसीलिए वे अब अधमरे-से हुए जाल में बैठ गए। व्याध ने भी उन्हें शान्त देखकर मारा नहीं। जाल समेटकर वह आगे चल पड़ा। चित्रग्रीव ने जब देखा कि अब व्याध निश्चिंत हो गया है और उसका ध्यान दूसरी ओर गया है, तभी उसने अपने साथियों को जाल समेत उड़ जाने का संकेत किया। संकेत पाते ही सब कबूतर जाल लेकर उड़ गए। व्याध को बहुत दु:ख हुआ। पक्षियों के साथ उसका जाल भी हाथ से निकल गया था। लघुपतनक भी उन उड़ते हुए कबूतरों के साथ उड़ने लगा।

चित्रग्रीव ने जब देखा कि अब व्याध का डर नहीं है तो उसने अपने साथियों को कहा–व्याध तो लौट गया। अब चिन्ता की कोई बात नहीं, चलो, हम महिलारोप्य शहर के पूर्वोत्तर भाग की ओर चलें वहाँ मेरा घनिष्ठ मित्र हिरण्यक

नाम का चूहा रहता है। उससे हम अपने जाल को कटवा लेंगे। तभी हम आकाश में स्वच्छन्द घूम सकेंगे।

वहाँ हिरण्यक नाम का चूहा अपने सौ बिलों वाले दुर्ग में रहता था। इसीलिए उसे डर नहीं लगता था। चित्रग्रीव ने उसके द्वार पर पहुँचकर आवाज़ लगाई। वह बोला–मित्र हिरण्यक! शीघ्र आओ। मुझपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है।

उसकी आवाज़ सुनकर हिरण्यक ने अपने ही बिल में छिपे-छिपे प्रश्न किया–तुम कौन हो? कहाँ से आए हो? क्या प्रयोजन है?

चित्रग्रीव ने कहा–मैं चित्रग्रीव नाम का कपोतराज हूँ। तुम्हारा मित्र हूँ। तुम जल्दी बाहर जाओ; मुझे तुमसे विशेष काम है।

यह सुनकर हिरण्यक चूहा अपने बिल से बाहर आया। वहाँ अपने परममित्र चित्रग्रीव को देखकर वह बड़ा बड़ा प्रसन्न हुआ, किन्तु चित्रग्रीव को अपने साथियों समेत जाल में फँसा देखकर वह चिन्तित भी हो गया। उसने पूछा–मित्र ! यह क्या हो गया तुम्हें?

चित्रग्रीव ने कहा–जीभ के लालच में हम जाल में फँस गए। तुम हमें जाल से मुक्त कर दो।

हिरण्यक जब चित्रग्रीव के जाल का धागा काटने लगा तब उसने कहा–पहले मेरे साथियों के बन्धन काट दो, बाद में मेरे काटना।

चित्रग्रीव–ये मेरे आश्रित हैं, अपने घर-बार को छोड़कर मेरे साथ आए हैं। मेरा धर्म है कि पहले इनकी सुख-सुविधा को दृष्टि में रखूँ। अपने अनुचरों में किया हुआ विश्वास बड़े से बड़े संकट से रक्षा करता है।

हिरण्यक चित्रग्रीव की यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सबके बन्धन काटकर चित्रग्रीव से कहा–मित्र ! अब अपने घर जाओ। विपत्ति के समय फिर मुझे याद करना। उन्हें भेजकर हिरण्यक चूहा अपने बिल में घुस गया चित्रग्रीव भी परिवार सहित अपने घर चला गया।

लघुपतनक कौवा यह सब दूर से देख रहा था। वह हिरण्यक के कौशल और उसकी सज्जनता पर मुग्ध हो गया। उसने मन ही मन सोचा, यद्यपि मेरा स्वभाव है कि मैं किसी का विश्वास नहीं करता, किसी को अपना हितैषी नहीं मानता, तथापि इस चूहे के गुणों से प्रभावित होकर मैं इसे अपना मित्र बनाना चाहता हूँ।

यह सोचकर वह हिरण्यक के दरवाज़े पर जाकर चित्रग्रीव के समान ही आवाज़ बनाकर हिरण्यक को पुकारने लगा। उसकी आवाज़ सुनकर हिरण्यक ने सोचा, यह कौन-सा कबूतर है? क्या इसके बन्धन कटने शेष रह गए हैं?

हिरण्यक ने पूछा–तुम कौन हो?

लघुपतनक–मैं लघुपतनक नाम का का कौवा हूँ

हिरण्यक–मैं तुम्हें नहीं जानता, तुम अपने घर चले जाओ।

लघुपतनक–मुझे तुमसे बहुत जरूरी काम है; एक बार दर्शन तो दे दो।

हिरण्यक–मुझे तुम्हें दर्शन देने का कोई प्रयोजन नहीं दिखाई देता।

लघुपतनक–चित्रग्रीव के बन्धन काटते देखकर मुझे तुमसे बहुत प्रेम हो गया है। कभी मैं बन्धन में पड़ जाऊँगा तो तुम्हारी सेवा में आना पड़ेगा।

हिरण्यक–तुम भोक्ता हो, मैं तुम्हारा भोजन हूँ, हममें प्रेम कैसा? जाओ, दो प्रकृति से विरोधी जीवों में मैत्री नहीं हो सकती।

लघुपतनक–हिरण्यक! मैं तुम्हारे द्वार पर मित्रता की भीख लेकर आया हूँ। तुम मैत्री नहीं करोगे तो यहीं प्राण दे दूँगा।

हिरण्यक–हम सहज वैरी हैं, हमसे मैत्री नहीं हो सकती।

लघुपतनक–मैंने तो कभी तुम्हारे दर्शन भी नहीं किए। हमसे वैर कैसा?

हिरण्यक–वैर दो तरह का होता है–सहज और कृत्रिम। तुम मेरे सहज वैरी हो।

लघुपतनक–मैं दो तरह के वैरों का लक्षण सुनना चाहता हूँ।

हिरण्यक–जौ वैर कारण से हो वह कृत्रिम होता है, कारणों से ही उस वैर का अन्त भी हो सकता है। स्वाभाविक वैर निष्कारण होता है, उसका अन्त हो ही नहीं सकता।

लघुपतनक ने बहुत विरोध किया, किन्तु हिरण्यक ने मैत्री के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। तब लघुपतनक ने कहा–यदि तुम्हें मुझपर विश्वास न हो तो तुम अपने बिल में छिपे रहो; मैं बिल के बाहर बैठा-बैठा ही तुमसे बातें कर लिया करूँगा।

हिरण्यक ने लघुपतनक की यह बात मान ली। किन्तु लघुपतनक को सावधान करते हुए कहा–कभी मेरे बिल में प्रवेश करने की चेष्टा मत करना–कौवा इस बात को मान गया। उसने शपथ ली कि कभी वह ऐसा नहीं करेगा।

तब से दोनों मित्र बन गए। ये नित्यप्रति परस्पर

बातचीत करते थे। दोनों के दिन बड़े सुख से कटते थे। कौवा कभी इधर-उधर से अन्न-संग्रह करके चूहे को भेंट भी देता था। मित्रता में आदान-प्रदान स्वाभाविक था। धीरे-धीरे दोनों की मैत्री घनिष्ठ होती गई। दोनों एक क्षण भी एक-दूसरे से अलग नहीं रह सकते थे।

बहुत दिन बाद एक दिन आँखों में आँसू भरकर लघुपतनक ने हिरण्यक से कहा–मित्र ! अब मुझे इस देश से विरक्ति हो गई है, इसलिए दूसरे देश में चला जाऊँगा।

कारण पूछने पर उसने कहा–इस देश में अनावृष्टि के कारण दुर्भिक्ष पड़ गया है। लोग स्वयं भूखे मर रहे हैं, एक दाना भी नहीं रहा। घर-घर में पक्षियों के पकड़ने के लिए जाल बिछ गए हैं। मैं तो भाग्य से ही बच गया। ऐसे देश में रहना ठीक नहीं।

हिरण्यक–कहाँ जाओगे?

लघुपतनक–दक्षिण दिशा की ओर एक तालाब है। वहाँ मन्थरक नाम का एक कछुआ रहता है। वह भी मेरा वैसा ही घनिष्ठ मित्र है जैसे तुम हो। उसकी सहायता से मुझे पेट भरने योग्य अन्न-माँस आदि अवश्य मिल जाएगा।

हिरण्यक–यही बात है तो मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगा। मुझे भी यहाँ बड़ा दु:ख है।

लघुपतनक–तुम्हें किस बात का दु:ख है

हिरण्यक–यह मैं वहीं पहुँचकर तुम्हें बताऊँगा।

लघुपतनक–किन्तु मैं तो आकाश में उड़ने वाला हूँ। मेरे साथ तुम कैसे जाओगे?

हिरण्यक–मुझे अपने पंखो पर बिठाकर वहाँ ले चलो।

लघुपतनक यह बात सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने कहा

कि वह सपात आदि आठों प्रकार की उड़ने की गतियों से परिचित है। वह उसे सुरक्षित निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देगा। यह सुनकर हिरण्यक चूहा लघुपतनक कौवे की पीठ पर बैठ गया दोनों आकाश में उड़ते हुए तालाब के किनारे पहुँचे।

मन्थरक ने जब देखा कि कोई कौवा चूहे को पीठ पर बिठाकर आ रहा है तो वह डर के मारे पानी में घुस गया। लघुपतनक को उसने पहचाना नहीं।

तब लघुपतनक हिरण्यक को थोड़ी दूर छोड़कर पानी में लटकती हुई शाखा पर बैठकर ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगा–मन्थरक! मन्थरक!! मैं तेरा मित्र लघुपतनक आया हूँ। आकर मुझसे मिल।

लघुपतनक की आवाज़ सुनकर मन्थरक खुशी से नाचता हुआ बाहर आया। दोनों ने एक-दूसरे का आलिंगन किया। हिरण्यक भी तब वहाँ आ गया और मन्थरक को प्रणाम करके वहाँ बैठ गया।

मन्थरक ने लघुपतनक ने पूछा–यह चूहा कौन है? भक्ष्य होते हुए भी इसे अपनी पीठ पर कैसे लाया?

लघुपतनक–एक हिरण्यक नाम का चूहा मेरा अभिन्न मित्र है। बड़ा गुणी है यह; फिर भी किसी दु:ख से दु:खी होकर मेरे साथ यहाँ आ गया है। इसे अपने देश से वैराग्य हो गया है।

मन्थरक–वैराग्य का कारण!

लघुपतनक–यह बात मैंने भी पूछी थी। इसने कहा था, वहीं चलकर बताऊँगा। मित्र हिरण्यक ! अब तुम अपने वैराग्य का कारण बतलाओ हिरण्यक ने तब यह कहानी सुनाई :

1. धन सब क्लेशों की जड़ है

दक्षिण देश के एक प्रान्त में महिलारोप्य नामक नगर से थोड़ी दूर महादेव जी का एक मन्दिर था। वहाँ ताम्रचूड़ नाम का भिक्षु रहता था। वह नगर से भिक्षा माँगकर भोजन कर लेता था और भिक्षा-शेष को भिक्षापात्र में रखकर खूँटों पर टाँग देता था। सुबह उसी भिक्षा-शेष में से थोड़ा-थोड़ा अन्न वह अपने नौकरों को बाँट देता था और उन नौकरों से मन्दिर की लिपाई-पुताई और सफाई कराता था।

एक दिन मेरे कई जाति-भाई चूहों ने मेरे पास आकर कहा–स्वामी! वह ब्राह्मण खूँटी पर भिक्षा-शेष वाला पात्र टाँग देता है, जिससे हम उस पात्र तक नहीं पहुँच सकते। आप चाहें तो खूँटी पर टंगे पात्र तक पहुँच सकते हैं। आपकी कृपा से हमें भी प्रतिदिन उसमें से अन्न-भोजन मिल सकता है।

उनकी प्रार्थना सुनकर मैं उन्हें साथ लेकर उसी रात वहाँ पहुँचा। उछलकर मैं खूँटी पर टँगे पात्र तक पहुँच गया। वहाँ से अपने साथियों को भी मैंने भरपेट अन्न दिया और स्वयं भी खूब खाया। प्रतिदिन इसी तरह मैं अपना और अपने साथियों का पेट पालता रहा।

ताम्रचूड़ ब्राह्मण ने इस चोरी से बचने का एक उपाय किया। वह कहीं से बाँस का डण्डा ले आया और रात-भर खूँटी पर टंगे पात्र को खटखटाता रहता। मैं भी बाँस के पिटने के डर से पात्र में नहीं जाता था। सारी रात यही संघर्ष

चलता रहता।

कुछ दिन बाद उस मन्दिर में बृहत्स्फिक नाम का एक संन्यासी अतिथि बनकर आया। ताम्रचूड़ ने उसका बहुत सत्कार किया। रात के समय दोनों में देर तक धर्म-चर्चा भी होती रही। किन्तु ताम्रचूड़ ने उस चर्चा के बीच भी फटे बाँस से भिक्षा-पात्र को खटखटाने का कार्यक्रम चालू रखा। आगन्तुक संन्यासी को यह बात बहुत बुरी लगी। उसने समझा कि ताम्रचूड़ उनकी बात को पूरे ध्यान से नहीं सुन रहा। इसे उसने अपमान समझा। इसलिए अत्यन्त क्रोधाविष्ट होकर उसने कहा–ताम्रचूड़! तू मेरे साथ मैत्री नहीं निभा रहा। मुझसे पूरे मन से बात भी नहीं करता। मैं भी इसी समय तेरा मन्दिर छोड़कर दूसरी जगह चला जाता हूँ।

ताम्रचूड़ ने डरते हुए उत्तर दिया–मित्र, तू मेरा अनन्य मित्र हैं। मेरी व्यग्रता का कारण दूसरा है; वह यह कि वह दुष्ट चूहा खूँटी पर टंगे भिक्षा पात्र में से भी भोज्य वस्तुओं को चुराकर खा जाता है। चूहे को डराने के लिए ही मैं भिक्षा-पात्र को खटका रहा हूँ। इस चूहे ने तो उछलने में बिल्ली और बन्दर को भी मात कर दिया है।

बृहत्स्फिक– उस चूहे का बिल तुझे मालूम है?

ताम्रचूड़–नहीं, मैं नहीं जानता।

बृहत्स्फिक–हो न हो उसका बिल भूमि में गड़े किसी खज़ाने के ऊपर है, तभी उसकी गर्मी से यह इतना उछलता है। कोई भी काम अकारण नहीं होता। कूटे हुए तिलों को यदि कोई बिना कूटे तिलों के भाव बेचने लगे तो भी उसका कारण होता है।

ताम्रचूड़–कूटे हुए तिलों का उदाहरण आपने कैसे दिया?

बृहत्स्फिक ने तब कूटे हुए तिलों की बिक्री की यह कहानी सुनाई :

2. बिना कारण कार्य नहीं

हेतुरत्र भविष्यति।

हर कार्य के कारण की खोज करो,
अकारण कुछ भी नहीं हो सकता।

एक बार मैं चौमासे में एक ब्राह्मण के घर गया था। वहाँ रहते हुए एक दिन मैंने सुना कि ब्राह्मण और ब्राह्मण-पत्नी में यह बातचीत हो रही थी :

ब्राह्मण–कल सुबह कर्क-संक्रान्ति है, भिक्षा के लिए मैं दूसरे गाँव जाऊँगा। वहाँ एक ब्राह्मण सूर्यदेव की तृप्ति के लिए कुछ दान करना चाहता है।

पत्नी–तुझे तो भोजन योग्य अन्न कमाना भी नहीं आता। तेरी पत्नी होकर मैंने कभी सुख नहीं भोगा, मिष्ठान नहीं खाए, वस्त्र और आभूषणों की तो बात ही क्या कहनी।

ब्राह्मण–देवी! तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए। अपनी इच्छा के अनुरूप धन किसी को नहीं मिलता। पेट भरने योग्य अन्न तो मैं भी ले ही आता हूँ। इससे अधिक की तृष्णा का त्याग कर दो। अति तृष्णा के चक्कर में मनुष्य के माथे पर शिखा हो जाती है।

ब्राह्मणी ने पूछा–यह कैसे?

तब ब्राह्मण ने सूअर, शिकारी और गीदड़ की यह कथा सुनाई :

3. अति लोभ नाश का मूल

अतितृष्णा न कर्त्तव्या , तृष्णां नैव परित्यजेत्

लोभ तो स्वाभाविक है, किन्तु अतिशय लोभ मनुष्य का सर्वनाश कर देता है।

एक दिन एक शिकारी शिकार की खोज में जंगल की ओर गया। जाते-जाते उसे वन में काले अंजन के पहाड़ जैसा काला बड़ा सूअर दिखाई दिया। उसे देखकर उसने अपनी धनुष की प्रत्यंचा को कानों तक खींचकर निशाना मारा। निशाना ठीक स्थान पर लगा। सूअर घायल होकर शिकारी की ओर दौड़ा शिकारी भी तीखे दाँतों वाले सूअर के हमले से गिरकर घायल हो गया। उसका पेट फट गया। शिकारी और शिकार दोनों का अन्त हो गया।

इसी बीच एक भटकता और भूख से तड़पता गीदड़ वहाँ आ निकला। वहाँ सूअर और शिकारी, दोनों को मरा देखकर वह सोचने लगा, आज देववश बड़ा अच्छा भोजन मिला है। कई बार बिना उद्यम के ही अच्छा भोजन मिल जाता है। इसे पूर्व जन्मों का फल ही कहना चाहिए।

यह सोचकर वह लाशों के पास जाकर पहले छोटी चीज़ें खाने लगा। उसे याद आ गया कि अपने धन का उपयोग मनुष्य को धीरे-धीरे ही कहना चाहिए; इसका

प्रयोग रसायन के प्रयोग की तरह करना उचित है। इस तरह अल्प धन भी बहुत काल तक काम देता है। अत: उसका भोग मैं इस रीति से करूँगा कि बहुत दिन तक इनके उपयोग से मेरी प्राण-यात्रा चलती रहे।

यह सोचकर उसने निश्चय किया कि पहले धनुष की डोरी को खाएगा। उस समय धनुष की प्रत्यंचा चढ़ी हुई थी; उसकी डोरी कमान के दोनों सिरों पर कस कर बँधी हुई थी। गीदड़ ने डोरी को मुख में लेकर चबाया। चबाते ही वह डोरी बहुत वेग से टूट गई; और धनुष के कोने का एक सिरा उसके माथे को भेद कर ऊपर निकल आया, मानो माथे पर शिखा निकल आई हो। इस प्रकार घायल होकर वह गीदड़ भी वहीं मर गया।

ब्राह्मण ने कहा–इसीलिए मैं कहता हूँ कि अतिशय लोभ से माथे पर शिखा हो जाती है।

ब्राह्मणी ने ब्राह्मण की यह कहानी सुनने के बाद कहा–यदि यही बात है तो मेरे घर में थोड़े-से तिल पड़े हैं। उनका शोधन करके कूट-छाँटकर अतिथि को खिला देती हूँ।

ब्राह्मण उसकी बात से सन्तुष्ट होकर भिक्षा के लिए दूसरे गाँव की ओर चल दिया। ब्राह्मणी ने भी अपने वचनानुसार घर में पड़े तिलों को छाँटना शुरू कर दिया। छाँट-पछाड़कर जब उसने तिलों को सुखाने के लिए धूप में फैलाया तो एक कुत्ते ने उन तिलों को मूत्र-विष्ठा से खराब कर दिया। ब्राह्मणी बड़ी चिन्ता में पड़ गई। यही तिल थे, जिन्हें पकाकर उसे अतिथि भोजन देना था। बहुत विचार के बाद उसने सोचा कि अगर वह इन शोधित तिलों के बदले अशोधित तिल माँगेंगी तो कोई भी दे देगा। इसके उच्छिष्ट

होने का किसी को पता ही नहीं लगेगा–यह सोचकर वह उन छटे हुए तिलों को छाज में रखकर घर-घर घूमने लगी और कहने लगी–कोई इन छंटे हुए तिलों के स्थान पर बिना छंटे तिल दे दे।

अचानक यह हुआ कि जिस घर में मैं भिक्षा के लिए गया था उसी घर में वह भी तिलों को बेचने पहुँच गई और कहने लगी–बिना छंटे हुए तिलों के स्थान पर छंटे हुए तिलों को ले लो। उस घर की गृह-पत्नी जब यह सौदा करने जा रही थी तब उसके लड़के ने, जो अर्थशास्त्र पढ़ा हुआ था, कहा :

–मामा ! इन तिलों को मत लो। कौन पागल होगा जो बिना छंटे हुए तिलों को लेकर छंटे हुए तिल दे देगा, वह बात निष्कारण नहीं हो सकती। अवश्यमेव इन छंटे हुए तिलों में कोई दोष होगा।

पुत्र के कहने पर माता ने सौदा नहीं किया।

यह कहानी सुनाने के बाद बृहस क ने ताम्रचूर्ण से पूछा–क्या तुम्हें उसके आने-जाने का मार्ग मालूम है?

ताम्रचूड़–भगवन्! वह तो मालूम नहीं। वह अकेला नहीं आता, दलबल समेत आता है। उनके साथ ही वह आता है और साथ ही जाता है।

बृहत्फिक–तुम्हारे पास कोई फावड़ा है।

ताम्रचूड़ ने कहा–हाँ, फावड़ा तो है।

दोनों ने दूसरे दिन फावड़ा लेकर हमारे (चूहों के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए) बिल तक आने का निश्चय किया। मैं उनकी बातें सुनकर बड़ा चिन्तित हुआ। मुझे विश्वास हो गया कि वे इस तरह मेरे दुर्ग तक पहुँचकर फावड़े से उसे नष्ट कर देंगे। इसलिए यह सोचकर मैं अपने

दुर्ग की ओर न जाकर किसी अन्य स्थान की ओर चल देता हूँ–इस तरह सीधा रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते से जब मैं सदल-बल जा रहा था तो मैंने देखा कि एक मोटा बिल्ला आ रहा है। यह बिल्ला चूहों की मण्डली देखकर उस पर टूट पड़ा। बहुत-से चूहे मारे गए, बहुत से घायल हुए। एक भी चूहा ऐसा न था जो लहूलुहान न हुआ हो। उन सबने इस विपत्ति का कारण मुझे ही माना। मैं ही उन्हें असली रास्ते के स्थान पर दूसरे रास्ते से ले जा रहा था। बाद में उन्होंने मेरा साथ छोड़ दिया। वे सब पुराने दुर्ग में चले गए।

इस बीच बृहत्स्फिक और ताम्रचूड़ भी फावड़ा समेत दुर्ग तक पहुँच गए। वहाँ पहुँच कर उन्होंने दुर्ग को खोदना शुरू कर दिया। खोदते-खोदते उनके हाथ वह खज़ाना लग गया। जिसकी गर्मी से मैं बन्दर और बिल्ली से भी अधिक उछल सकता था। खज़ाना लेकर दोनों ब्राह्मण मन्दिर को लौट गए। मैं जब अपने दुर्ग को गया तो उसे उजड़ा देखकर मेरा दिल बैठ गया। उसकी यह अवस्था देखी नहीं जाती थी। सोचने लगा, क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कहाँ जाऊँ? मेरे मन को कहाँ शान्ति मिलेगी?

बहुत सोचने के बाद मैं फिर निराशा में डूबा हुआ उसी मन्दिर में चला गया जहाँ ताम्रचूड़ रहता था। मेरे पैरों की आहट सुनकर ताम्रचूड़ ने फिर खूँटी पर टंगे भिक्षा-पात्र को फटे बाँस से पीटना शुरू कर दिया। बृहत्स्फिक ने उससे पूछा–मित्र ! अब भी तू नि:शंक होकर नहीं सोता। क्या बात है?

ताम्रचूड़–भगवन्! वह चूहा फिर यहाँ आ गया है। मुझे डर है, मेरे भिक्षा-शेष को वह फिर न कहीं खा जाए।

बृहत्स्फिक-मित्र! अब डरने की कोई बात नहीं। धन

के खज़ाने के छिनने के साथ उसके उछलने का उत्साह भी नष्ट हो गया। सभी जीवों के साथ ऐसा होता है। धन-बल से ही मनुष्य उत्साही होता है, वीर होता है और दूसरों को पराजित करता है।

यह सुनकर मैंने पूरे बल से छलाँग मारी, किन्तु खूँटी पर टंगे पात्र तक न पहुँच सका, ओर मुख के बल ज़मीन पर गिर पड़ा। मेरे गिरने की आवाज़ सुनकर मेरा शत्रु बृहत्स्फिक ताम्रचूड़ से हँसकर बोला–देख ताम्रचूड़! इस चूहे को देख! खज़ाना छिन जाने के बाद यह फिर मामूली चूहा ही रह गया है। इसकी छलाँग में अब वह वेग नहीं रहा, जो पहले था। धन में बड़ा चमत्कार है। धन से ही सब बली होते हैं, पण्डित होते हैं। धन के बिना मनुष्य की अवस्था दन्तहीन साँप की तरह हो जाती है।

धनाभाव से मेरी भी बड़ी दुर्गति हो गई। मेरे ही नौकर मुझे उलाहना देने लगे कि यह चूहा हमारा पेट पालने योग्य तो है नहीं; हाँ हमें बिल्ली को खिलाने योग्य अवश्य है। यह कहकर उन्होंने मेरा साथ छोड़ दिया। मेरे साथी मेरे शत्रुओं के साथ मिल गए।

मैंने भी एक दिन सोचा कि मैं फिर मन्दिर में जाकर खज़ाना पाने का यत्न करूँगा। इस यत्न में मेरी मृत्यु भी हो जाए तो भी चिन्ता नहीं।

यह सोचकर मैं फिर मन्दिर में गया। मैंने देखा कि ब्राह्मण खज़ाने की पेटी को सिर के नीचे रखकर सो रहे हैं। मैं पेटी में छिद्र करके जब धन चुराने लगा तो वे जाग गए। लाठी लेकर वे मेरे पीछे दौड़े। एक लाठी मेरे सिर पर लगी। आयु शेष थी इसलिए मृत्यु नहीं हुई, किन्तु घायल बहुत हो गया। सच तो यह है कि जो धन भाग्य में लिखा होता है वह

तो मिल ही जाता है। संसार की कोई शक्ति उसे हस्तगत होने में बाधा नहीं डाल सकती। इसलिए मुझे कोई शक नहीं है। जो हमारे हिस्से का है, वह हमारा अवश्य होगा।

इतनी कथा कहने के बाद हिरण्यक ने कहा–इसीलिए मुझे वैराग्य हो गया है और इसीलिए मैं लघुपतनक की पीठ पर चढ़कर यहाँ आ गया हूँ।

मन्थरक ने आश्वासन देते हुए कहा–मित्र ! जवानी और धन की चिन्ता न करो। जवानी और धन का उपयोग क्षणिक ही होता है। पहले धन के अर्जन में दु:ख है; फिर उसके संरक्षण में दु:ख। जितने कष्टों से मनुष्य धन का संचय करता है उससे शतांश कष्टों से भी यदि वह धर्म का संचय करे तो उसे मोक्ष मिल जाए। विदेश-प्रवास का भी दु:ख मत करो। व्यवसायी के लिए कोई स्थान दूर नहीं, विद्वान के लिए कोई विदेश नहीं और प्रियवादी के लिए कोई पराया नहीं।

इसके अतिरिक्त धन कमाना तो भाग्य की बात है। भाग्य न हो तो संचित धन भी नष्ट हो जाता है। अभागा आदमी अर्थोपार्जन करके भी उसका भोग नहीं कर पाता; जैसे मूर्ख सोमिलक नहीं कर पाया था।

हिरण्यक ने पूछा–कैसे?

मन्थरक ने तब सोमिलक की यह कथा सुनाई :

4. भाग्यहीन नर पावत नाहीं

अर्थस्योपार्जनं कृत्वा नैवाभोगं समश्नुते।

करतलगतमपि नश्यति तु भवितव्यता नाऽस्ति॥

भाग्य में न हो तो हाथ में आए धन का भी उपभोग नहीं होता।

एक नगर में सोमिलक नाम का एक जुलाहा रहता था। विविध प्रकार के रंगीन और सुन्दर वस्त्र बनाने के बाद भी उसे भोजन-वस्त्र मात्र से अधिक धन कभी प्राप्त नहीं होता था। अन्य जुलाहे मोटा-सादा कपड़ा बुनते हुए धनी हो गए थे। उन्हें देखकर एक दिन सोमिलक ने अपनी पत्नी से कहा– प्रिये ! देखो मामूली कपड़ा बुनने वाले जुलाहों ने भी कितना धन-वैभव संचित कर लिया है। और मैं इतने सुन्दर, उत्कृष्ट वस्त्र बनाते हुए भी आज तक निर्धन ही हूँ। प्रतीत होता है, यह स्थान मेरे लिए भाग्यशाली नहीं है; अत: विदेश जाकर धनोपार्जन करूँगा।

सोमिलनक-पत्नी ने कहा—प्रियतम! विदेश में धनोपार्जन की कल्पना मिथ्या स्वप्न से अधिक नहीं। धन की प्राप्ति होनी हो तो स्वदेश में ही हो जाती है। न होनी हो तो हथेली में आया धन भी नष्ट हो जाता है। अत: यहीं रहकर व्यवसाय करते रहो, भाग्य में लिखा होगा तो यहीं धन की वर्षा हो जाएगी।

सोमिलक–भाग्य-अभाग्य की बात तो कायर लोग करते हैं। लक्ष्मी उद्योगी और पुरुषार्थी सिंह-नर को प्राप्त होती है। सिंह को भी अपने भोजन के लिए उद्यम करना पड़ता है। मैं भी उद्यम करूँगा; विदेश जाकर धन-संचय का यत्न करूँगा।

यह कहकर सोमिलक वर्धमानपुर चला गया। वहाँ तीन वर्षों में अपने कौशल से 300 सोने की मुहरें लेकर वह

घर की ओर चल दिया। रास्ता लम्बा था। आधे रास्ते में ही दिल ढल गया, शाम हो गई। आसपास कोई घर नहीं था। एक मोटे वृक्ष की शाखा के ऊपर चढ़कर रात बिताई। सोते-सोते स्वप्न में आया कि दो भयंकर आकृति के पुरुष आपस में बात कर रहे हैं। एक ने कहा–हे पौरुष, तुझे क्या मालूम नहीं है कि सोमिलक के पास भोजन-वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता; तब तूने इसे 300 मोहरें क्यों दीं?–दूसरा बोला–हे भाग्य! मैं तो प्रत्येक पुरुषार्थी को एक बार उसका फल दूँगा। उसे उसके पास रहने देना या नहीं रहने देना तेरे अधीन है।

स्वप्न के बाद सोमिलक की नींद खुली तो देखा मुहरों का पात्र खाली था। इतने कष्टों से संचित धन के इस तरह लुप्त हो जाने से सोमिलक बड़ा दु:खी हुआ और सोचने लगा, अपनी पत्नी को कौन-सा मुख दिखाऊँगा, मित्र क्या कहेंगे?–यह सोचकर वह फिर वर्धमान को ही वापस आ गया। वहाँ दिन-रात घोर परिश्रम करके उसने वर्ष-भर में ही 500 मुहरें जमा कर लीं। उन्हें लेकर वह घर की ओर आ रहा था कि आधे रास्ते रात पड़ गई। इस बार वह सोने के लिए ठहरा नहीं, चलता ही गया। किन्तु चलते-चलते ही उसने फिर दोनों–पौरुष और भाग्य–को पहले की तरह बातचीत करते सुना। भाग्य ने फिर वही बात कही–हे पौरुष! क्या तुझे मालूम नहीं कि सोमिलक के पास भोजन-वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता; तब तूने 500मुहरें क्यों दीं?–पौरुष ने वहीं उत्तर दिया–हे भाग्य! मैं तो प्रत्येक व्यवसायी को एक बार उसका फल दूँगा ही, इससे आगे तेरे अधीन है; उसके पास रहने दे या छीन ले। इस बातचीत के बाद सोमिलक ने जब अपनी मुहरों वाली गठरी देखी तो वह

मुहरों से खाली थी।

इस तरह दो बार खाली हाथ होकर सोमिलक का मन बहुत दु:खी हुआ। उसने सोचा–इस धनहीन जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी है। आज इस वृक्ष की टहनी से रस्सी बाँधकर उस पर लटक जाता हूँ और यहीं प्राण दे देता हूँ।

गले में फंदा लगा, उसे टहनी से बाँधकर जब वह लटकने वाला ही था कि आकाशवाणी हुई–सोमिलक! ऐसा दु:साहस मत कर। मैंने ही तेरे धन चुराया है। तेरे भाग्य में भोजन-वस्त्र मात्र से अधिक धन का उपयोग नहीं लिखा है। व्यर्थ के धन संचय में अपनी शक्तियाँ नष्ट मत कर। घर जाकर सुख से रह। तेरे साहस से तो मैं प्रसन्न हूँ; तू चाहे तो एक वरदान माँग ले। मैं तेरी इच्छा पूरी करूँगा।

सोमिलक ने कहा–मुझे वरदान में प्रचुर धन दे दो।

अदृष्ट देवता ने उत्तर दिया–धन का क्या उपयोग? तेरे भाग्य में उसका उपभोग नहीं है। भोगरहित धन को लेकर क्या करेगा?

सोमिलक तो धन का भूखा था, बोला–भोग हो या न हो, मुझे धन ही चाहिए। बिना उपयोग या उपभोग के भी धन की बड़ी महिमा है। संसार में वही पूज्य माना जाता है, जिसके पास धन का संचय हो। कृपण और अकुलीन भी समाज में आदर पाते हैं। संसार उनकी ओर आशा लगाए बैठा रहता है; जिस तरह वह गीदड़ बैल से आशा रखकर उसके पीछे पन्द्रह दिन तक घूमता रहा।

भाग्य ने पूछा–किस तरह?

सोमिलक ने फिर बैल और गीदड़ की यह कहानी सुनाई।

5. उड़ते के पीछे भागना

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि॥

जो निश्चित को छोड़कर अनिश्चित के पीछे भटकता है, उसका निश्चित धन भी नष्ट हो जाता है।

एक स्थान पर तीक्ष्णविषाण नाम का एक बैल रहता था। बहुत उन्मत्त होने के कारण उसे किसान ने छोड़ दिया था। अपने साथी बैलों से भी छूटकर जंगल में ही मतवाले हाथी की तरह बेरोक-टोक घूमा करता था।

उसी जंगल में प्रलोभक नाम का एक गीदड़ भी था। एक दिन वह अपनी पत्नी सहित नदी के किनारे बैठा था कि वह बैल वहीं पानी पीने आ गया। बैल के माँसल कन्धों पर लटकते हुए मांस को देखकर गीदड़ी ने गीदड़ से कहा–स्वामी, इस बैल की लटकती हुई लोथ को देखो। न जाने किस दिन यह जमीन पर गिर जाए। इसके पीछे-पीछे जाओ–जब यह ज़मीन पर गिरे, ले आना।

गीदड़ ने उत्तर दिया–प्रिये! न जाने यह लोथ गिरे या न गिरे। कब तक इसका पीछा करूँगा? इस व्यर्थ के काम में मुझे मत लगाओ। हम यहाँ चैन से बैठे हैं। जो चूहे इस रास्ते से जाएँगे, उन्हें मारकर ही हम भोजन कर लेंगे। तुझे यहाँ अकेली छोड़कर जाऊँगा तो शायद कोई दूसरा गीदड़

ही इस घर को अपना बना ले। अनिश्चित लाभ की आशा में निश्चित वस्तु का परित्याग कभी अच्छा नहीं होगा।

गीदड़ी बोली–मैं नहीं जानती थी कि तू इतना कायर और आलसी है। तुझमें इतना भी उत्साह नहीं है। जो थोड़े से धन से सन्तुष्ट हो जाता है, वह थोड़े से धन को भी गँवा बैठता है। इसके अतिरिक्त अब मैं चूहे के माँस से ऊब गई हूँ। बैल के ये मांस-पिण्ड अब गिरने ही वाले दिखाई देते हैं। इसलिए अब इसका पीछा करना चाहिए।

तब से गीदड़-गीदड़ी दोनों बैल के पीछे घूमने लगे। उनकी आँखें उसके लटकते मांस-पिण्ड पर लगी थीं, लेकिन वह मांस-पिण्ड 'अब गिरा, तब गिरा', लगते हुए भी गिरता नहीं था। अन्त में दस-पन्द्रह दिन इसी तरह बैल का पीछा करने के बाद एक दिन गीदड़ ने कहा–प्रिये ! न मालूम यह गिरे भी या नहीं, इसलिए अब इसकी आशा छोड़कर अपनी राह लो।

कहानी सुनने के बाद पौरुष ने कहा–यदि यही बात है, धन की इच्छा इतनी ही प्रबल है, तो तू फिर वर्धमानपुर चला जा। वहाँ दो बनियों के पुत्र हैं, एक गुप्तधन, दूसरा उपभुक्तधन। इन दोनों प्रकार के धनों का स्वरूप जानकर तू किसी एक का वरदान माँगना। यदि तू उपयोग की योग्यता के बिना धन चाहेगा तो तुझे गुप्तधन दे दूँगा। और यदि खर्च के लिए धन चाहेगा तो उपभुक्त धन दे दूँगा।

यह कहकर वह देवता लुप्त हो गया। सोमिलक उसके आदेशानुसार फिर वर्धमान पुर पहुँचा। शाम हो गई थी। पूछता-पाछता वह गुप्तधन के घर चला गया। घर पर उसका किसी ने सत्कार नहीं किया। इसके विपरीत उसे भला-बुरा कहकर गुप्तधन और उसकी पत्नी ने घर से

बाहर धकेलना चाहा। किन्तु सोमिलक अपने संकल्पों का पक्का था। सबके विरुद्ध होते हुए भी वह घर में घुसकर जा बैठा। भोजन के समय उसे गुप्तधन ने रूखी-सूखी रोटी दे दी। उसे खाकर वह वहीं सो गया। स्वप्न में उसने फिर दोनों देव देखे। वे बातें कर रहे थे। एक कह रहा था–हे पौरुष! तूने गुप्तधन को भोग्य से इतना अधिक धन क्यों दे दिया कि उसने सोमिलक को भी रोटी दे दी।–पौरुष ने उत्तर दिया–मेरा इसमें दोष नहीं। मुझे पुरुष के हाथों धर्म-पालन करवाना ही है, उसका फल देना तेरे अधीन है।

दूसरे दिन गुप्तधन पेचिस से बीमार हो गया और उसे उपवास करना पड़ा। इस तरह उसकी क्षतिपूर्ति हो गई।

सोमिलक अगले दिन सुबह उपभुक्तधन के घर गया। वहाँ उसने भोजनादि द्वारा उसका सत्कार किया। सोने के लिए सुन्दर शय्या भी दी। सोते-सोते उसने फिर सुना, वही दोनों देव बातें कर रहे थे। एक कह रहा था–हे पौरुष! इसने सोमिलक का सत्कार करते हुए बहुत धन व्यय कर दिया है। अब इसकी क्षतिपूर्ति कैसे होगी ?–दूसरे ने कहा–हे भाग्य! सत्कार के लिए धन व्यय करना मेरा धर्म था, इसका फल देना तेरे अधीन है।

सुबह होने पर सोमिलक ने देखा कि राजदरबार से एक राजपुरुष राजप्रसाद के रूप में धन की भेंट लाकर उपभुक्तधन को दे रहा था। यह देखकर सोमिलक ने विचार किया कि यह संचयरहित उपयुक्त धन ही गुप्तधन से श्रेष्ठ है। जिस धन का दान कर दिया जाए या सत्कार्यों में व्यय कर दिया जाए वह धन संचित धन की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है।

मन्थरक ने ये कहानियाँ सुनाकर हिरण्यक से कहा कि

इस कारण तुझे भी धन-विषयक चिन्ता नहीं करनी चाहिए। तेरा जमीन में गड़ा हुआ खजाना चला गया तो जाने दे। भोग के बिना उसका तेरे लिए उपयोग भी क्या था। उपार्जित धन का सबसे अच्छा संरक्षण यह है कि उसका दान कर दिया जाए। शहद की मक्खियाँ इतना मधु संचय करती हैं, किन्तु उपयोग नहीं कर सकतीं। इस संचय से क्या लाभ?

मन्थरक कछुआ, लघुपतनक कौवा और हिरण्यक चूहा वहाँ बैठे-बैठे यही बातें कर रहे थे कि वहाँ चित्राँग नाम का हरिण कहीं से दौड़ता-हाँफता आ गया। एक व्याध उसका पीछा कर रहा था। उसे आता देखकर कौवा उड़कर वृक्ष की शाखा पर बैठ गया। हिरण्यक पास के बिल में घुस गया और मन्थरक तालाब के पानी में जा छिपा।

कौवे ने हरिण को अच्छी तरह देखने के बाद मन्थरक से कहा–मित्र मन्थरक! यह तो हरिण के आने की आवाज है। एक प्यासा हरिण पानी पीने के लिए तालाब पर आया है। उसी का यह शब्द है, मनुष्य का नहीं।

मन्थरक–यह हरिण बार-बार पीछे मुड़कर देख रहा है और डरा हुआ-सा है। इसलिए यह प्यास नहीं, बल्कि व्याध के डर से भागा हुआ है। देख तो सही इसके पीछे व्याध आ रहा है या नहीं।

दोनों की बात सुनकर चित्राँग हरिण बोला–मन्थरक ! मेरे भय का कारण तुम जान गए हो। मैं व्याध के बाणों से डरकर बड़ी कठिनाई से यहाँ पहुँच पाया हूँ। तुम मेरी रक्षा करो। अब तुम्हारी शरण में हूँ। मुझे कोई ऐसी जगह बतलाओ जहाँ व्याध न पहुँच सके।

मन्थरक ने हरिण को घने जंगलों में भाग जाने की

सलाह दी। किन्तु लघुपतनक ने ऊपर से देखकर बतलाया कि व्याध दूसरी दिशा में चले गए हैं, इसलिए अब डर की कोई बात नहीं है। इसके बाद चारों मित्र तालाब के किनारे वृक्षों की छाया में मिलकर देर तक बातें करते रहे।

कुछ समय बाद एक दिन जब कछुआ, कौवा और चूहा बातें कर रहे थे, शाम हो ग़ई। बहुत देर बाद भी हरिण नहीं आया तीनों को सन्देह होने लगा कि कहीं वह व्याध के जाल में तो नहीं फँस गया; अथवा शेर, बाघ आदि ने उस पर हमला न कर दिया हो। घर में बैठे स्वजन अपने प्रवासी प्रियजनों के सम्बन्ध में सदा शंकित रहते हैं।

बहुत देर तक भी चित्राँग हरिण नहीं आया तो मन्थरक कछुए ने लघुपतनक कौवे को जंगल में जाकर हरिण को खोजने की सलाह दी। लघुपतनक ने कुछ दूर जाकर ही देखा कि वहाँ चित्राँग एक जाल में बँधा हुआ है। लघुपतनक उसके पास गया। उसे देखकर चित्राँग की आँखों में आँसू आ गए। वह बोला–अब मेरी मृत्यु निश्चित है। अन्तिम समय में तुम्हारे दर्शन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। प्राण-विसर्जन के समय मित्र-दर्शन बड़ा सुखद होता है। मेरे अपराध क्षमा करना।

लघुपतनक ने धीरज बाँधते हुए कहा–घबराओ मत। मैं अभी हिरण्यक चूहे को बुला लाता हूँ। वह तुम्हारे जाल काट देगा।

यह कहकर वह हिरण्यक के पास चला गया और शीघ्र ही उसे पीठ पर बिठाकर ले आया। हिरण्यक अभी जाल काटने की विधि सोच ही रहा था कि लघुपतनक ने वृक्ष के ऊपर से दूर पर किसी को देखकर कहा–यह तो बहुत बुरा हुआ।

हिरण्यक ने पूछा–क्या कोई व्याध आ रहा है?

लघुपतनक–नहीं, व्याध तो नहीं, किन्तु मन्थरक कछुआ इधर चला आ रहा है।

हिरण्यक–तब तो खुशी की बात है। दु:खी क्यों होता है?

लघुपतनक–दु:खी इसलिए होता हूँ कि व्याध के आने पर मैं ऊपर उड़ जाऊँगा, हिरण्यक बिल में घुस जाएगा, चित्राँग भी छलाँगें मारकर घने जंगल में घुस जाएगा; लेकिन यह मन्थरक कैसे अपनी जान बचाएगा? यही सोचकर चिन्तित हो रहा हूँ।

मन्थरक के वहाँ आने पर हिरण्यक ने मन्थरक से कहा–मित्र ! तुमने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया। अब भी वापस लौट जाओ, कहीं व्याध न आ जाए।

मन्थरक ने कहा–

मित्र! मैं अपने मित्र को आपत्ति में जानकर वहाँ नहीं रह सका। सोचा उसकी आपत्ति में हाथ बंटाऊँगा, तभी चला आया।

ये बातें हो ही रही थीं कि उन्होंने व्याध को उसी ओर आते देखा। उसे देखकर चूहे ने उसी क्षण चित्राँग के बन्धन काट दिए। चित्राँग भी उठकर घूम-घूमकर पीछे देखता हुआ आगे भाग खड़ा हुआ। लघुपतनक वृक्ष पर उड़ गया। हिरण्यक पास के बिल में घुस गया।

व्याध अपने जाल में किसी को न पाकर बड़ा दु:खी हुआ। वहाँ से वापस जाने का मुड़ा ही था कि उसकी दृष्टि धीरे-धीरे जाने वाले मन्थरक पर पड़ गई। उसने सोचा, आज हरिण तो हाथ आया नहीं, कछुए को ही ले चलता हूँ। कछुए को ही आज भोजन बनाऊँगा। उससे ही पेट भरूँगा–

यह सोचकर वह कछुए को कन्धे पर डालकर चल दिया। उसे ले जाते देख हिरण्यक और लघुपतनक को बड़ा दुःख हुआ। दोनों मित्र मन्थरक को बड़े प्रेम और आदर से देखते थे। चित्राँग ने भी मन्थरक को व्याध के कन्धों पर देखा तो व्याकुल हो गया। तीनों मित्र मन्थरक की मुक्ति का उपाय सोचने लगे।

कौए ने एक उपाय ढूँढ निकाला। वह यह कि चित्राँग व्याध के मार्ग में तालाब के किनारे जाकर लेट जाए। मैं तब उसे चोंच मारने लगूँगा। व्याध समझेगा कि हरिण मरा हुआ। वह मन्थरक को ज़मीन पर रखकर इसे लेने के लिए जब आएगा तो हिरण्यक जल्दी-जल्दी मन्थरक के बन्धन काट दे। मन्थरक तालाब में घुस जाए और चित्राँग छलाँगें मारकर घने जंगल में चला जाए। मैं उड़कर वृक्ष पर चला ही जाऊँगा। सभी बच जाएँगे, मन्थरक भी छूट जाएगा।

तीनों मित्रों ने यही उपाय किया। चित्राँग तालाब के किनारे मृतवत् जा लेटा। कौवा उसकी गर्दन पर सवार होकर चोंच चलाने लगा। व्याध ने देखा तो समझा कि हरिण जाल से छूटकर दौड़ता-दौड़ता यहाँ मर गया है। उसे लेने के लिए वह जालबद्ध कछुए को जमीन पर छोड़कर आगे बढ़ा तो हिरण्यक ने अपने वज्र समान तीखे दाँतों से जाल के बन्धन काट दिए। मन्थरक पानी में घुस गया चित्राँग भी दौड़ गया।

व्याध ने चित्राँग को हाथ से निकलकर जाते देखा तो आश्चर्य में डूब गया। वापस जाकर जब उसने देखा कि कछुआ भी जाल से निकलकर भाग गया है। तब उसके दुःख की सीमा न रही। वहीं एक शिला पर बैठकर विलाप करने लगा।

दूसरी ओर चारों मित्र, लघुपतनक, मन्थरक, हिरण्यक और चित्राँग प्रसन्नता से फूले न समाते थे। मित्रता के बल पर ही चारों ने व्याध से मुक्ति पाई थी।

मित्रता में बड़ी शक्ति है। मित्र संग्रह करना जीव की सफलता में बड़ा सहायक है। विवेकी व्यक्ति को सदा मित्र-प्राप्ति में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

॥ द्वितीय तन्त्र समाप्त॥